Field of Fellowship - Folk/ Traditional and Indigenous Art, (Folk Theatre)

Period of the report – 1st January,2016 to 31st Dec 2017.

Name and Address

Of the awardees - DEEP KUMAR

Vill- sehli, Post Office- sehli,

Tehsil- Kotli, Dist- Mandi,

Himachal Pradesh-175052

Email- dipmandi@gmail.com

Mobile No.- 8219678144

Relevant File No - CCRT/JF-3/28/2015

सेवा में,

निदेशक,
सांस्कृतिक शोध एवं प्रशिक्षण केन्द्र,
15-A, सेक्टर -7, द्वारका
नई दिल्ली - 110075.

विषय :- समग्र प्रोग्रेस रिपोट (Junior Fellowship)

महोदय / महोदया,

मैं दीप कुमार file no- ccrt/jf-3/28/2015 अपने शोध प्रोजेक्ट **"हिमाचली लोक नाट्य कलाओं का तुलनाल्मक अध्धययन एवं उनका आधुनिक रंगमंच में महत्व"** का शोध कार्य पूरा कर लिया है। मैं अपको चारों रिपोर्ट भेज चुका हूँ। मै बहुत गर्व महसूस कर रहा हूँ कि मुझे यह कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इसके लिए मै सांस्कृतिक शोघ एवं प्रशिक्षण केन्द्र और संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार का धन्यवाद करता हूँ

अत: आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है '**समग्र प्रोग्रेसिव रिपोर्ट**'

धन्यावाद

प्रार्थी

दीप कुमार
गांव- सेहली, डाक- सेहली,
तहसील- कोटली, जिला- मण्डी
हिमाचल प्रदेश .175052

“ हिमाचली लोक नाट्य कलाओँ का तुलनात्मक अध्ययन एवम् उनका आधुनिक रंगमंच में महत्व ”

संदर्भ पुस्तकों की सूची

1. नाट्यशास्त्र- भरतमुनि
2. श्री जगदीश चन्द्र माथुर- परम्पराशील नाट्य प्रथम संस्करण (1969)
3. बलवन्त गार्गी- रंगमंच
4. डाँ गिरश रस्तोगी- आधुनिक हिन्दी नाटक
5. सत्येन्द्र- लोक साहित्य विज्ञान
6. अशोक हंस- करियाला
7. जुगल किशोर पेटशाली- उतरांचल के लोक वाद्य
8. प्रसन्ना- इन्डियन मैथड इन एक्टिंग

एक परिचय

(हिमाचल से)

हमारा देश विभिन्न संस्कृतियों से भरपूर है | हर प्रदेश की अपनी भाषा, वेशभूषा, खान-पान, एवम् लोक परंम्परा है | मशहूर कहावत है-

"कोश-कोश पर बदले पानी,
कोश-कोश पर वाणी"

साथक सिद्ध होती है, इसलिए हमारा देश अन्य देशों की तुलना म सबसे विशिष्ट स्थान रखता ह |अपनी संस्कृति एवम् सांस्कृतिक धरोहर के कारण यहां हर प्रदेश की अपनी लोक संस्कृति है जैसे -

महाराष्ट्र- तमाशा
गुजरात- भवई
कनाटक- यक्षगान
केरल- कुड़ियट्टम्
असम- जात्रा
कशमीर- भांड पाथेर
पंजाब और हरियाणा- स्वाँग
उत्तर प्रदेश- नौंटकी, रामलीला एवम् रासलीला
राजस्थान- ख्याल
मध्यप्रदेश और छतीसगढ- नाचा

वैसे ही हिमाचल प्रदेश के उत्कृष्ट लोक नाट्य जिसम शामिल ह- “करियाला, बाँठडा एवम् भगत” |

उपरोक्त सभी लोक नाट्य कलाय आज भी उसी उत्साह के साथ दशकों के सामन प्रस्तुत की जाती है, और उतनी ही लोकप्रिय भी ह। जो नाट्य शैलियां, लोक जीवन की स्वाभाविकता से सीधे जुडकर, उसकी सामुहिक आवश्कताओं एवं प्रेरणाओं से निमित होने के कारण लोकवाता के कथानकों, धामिक-सामाजिक, लोक विश्वाशों तथा लोक तत्वों को समेट कर चलती ह वही लोक नाट्य ह। लोक नाट्यों की कुछ खास विशेषताय ह जैसे-

1. इसम काव्य, संगीत एवं नृत्य की प्रधानता होती है | साथ ही जीवन के हर्षाल्लास को उन्मुक्त रूप म व्यक्त किया जाता है।

2. लोक नाट्यों का आकषण, मंचन की प्रकिया म अधिक है, कथा म कम, क्योंकि लोक नाट्य चाहे कहीं का भी हो, उसका मंच विधान जटिल नहीं होता |

3. लोक नाट्य जितने लिखे जाते ह, उससे कहीं अधिक वो रचे गए ह।

4. शास्त्र सम्मत् अभिनय के चारों अंगों म आहाय एवं सात्विक को छोडकर, हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्यों म आंगिक एवं वाचिक अभिनय की प्रधानता अधिक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से लोक नाट्यों की परंम्परा म प्रचीनकाल से ही साहित्यिक नाटकों के समानान्तर विद्धयमान नाट्यधर्मा दोनों

परंम्पराओं का, न केवल उल्लेख है बल्कि लोक नाट्य परंम्परा का नाट्यधर्मा रुढियां के विकास म अमुल्य योगदान है, जो स्वीकाय है। साथ हा कहा गया है कि लोक नाट्य म लोक का शुद्ध स्वाभाविक अनुकरण हा साध्य है।

“लोक सिद्ध भवेत् सिद्धं नाट्य लोक स्वभाव
तत्पात नाट्य प्रयोगे तु प्रमाणं लोक हष्यते”

हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्यां म चाहे वो “करियाला, बांढडा या भगत” जो भी हो सभी का आधार वस्तुतः अलिखित परंम्पराओं का प्रचलित रुप है ।

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र म जो कहा है कि रस के आधार पर नाटक होता है, इसका असर मुझ पर बहुत गहरा पङा। सुझ-बुझ वाले लोग जानत ह कि ‘लोक’ पहले आया और शास्त्रीय नाटक बाद म आया, फिर उन्हांने प्रभावित किया लोक नाटक को। इस तरह एक दुसरे पर प्रभाव डालते हुये इन नाटकां का विकास हुआ । हमारे यहां शास्त्रीय नाटक, रस के बल पर चलता है और उसम सादगी यक़ानन है। इसके बल पर हमारा लोक नाट्य भी चलता है । हमारे यहां ‘शास्त्रीय’ और ‘लोक’ संगीत का इतना करीबी रिश्ता है कि एक नाटक के अन्दर इन दोनां का मौजूदगी एक साथ निभ जाती है। ये कुछ लोगां का, गलत धारणा है कि ‘लोक’ अलग, और ‘शास्त्र’ अलग है। इनका इसी नज़दीका के कारण हा हमारा संगीत एवं लोक नाट्य आगे बढा है। हिमाचल प्रदेश का लोक नाट्य शैलियां लोक जीवन से जीवित और लोक मुख से मुखरित होने वाला कलाय ह, जिसम लोक कथाओं, मुहावरां, कहानियां और लोक गीतां का समावेश है।

लोक नाट्यों का कथावस्तु उनस निहित गीत नृत्य, संगीत सभी परंम्परा से प्रेषित अवश्य ह, किन्तु वो अनिश्चित होते ह, उनम शास्त्रों या नियमादि का कोई स्थान नहीं होता। जहां तक नाटक के मुख्य आधार तत्व का प्रश्न है यथा कथावस्तु, संगीत, संवाद, नृत्य, पात्र, दृश्य, वेशभूषा सभी का एक निश्चित रुप नहीं रहता, मुख्य रुप से कथानक जिससे दशक पहले से ही परिचित होता ह, बावजुद इसके हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्यों की अपनी कुछ विशेषताय और औपचारिकताय भी ह, जिन्ह लोक नाट्य प्रस्तुति म अनिवाय समझा जाता है। नाटक के आरंम्भ म नाटक म प्रयुक्त होने वाले वाद्य यंन्त्रों को बजाया जाना और नाटक का आरम्भ वंदना से करना। "करियाला, बांढड़ा और भगत" के आरम्भ करने का अपना ढंग होता है।

प्रारंम्भ म वाद्य यन्त्रों को ज़ोर-ज़ोर से बजाया जाता है, बिषेश रुप से, बड़े से 'ढोल' या 'नगाड़े' को ज़ोर-ज़ोर से बजाकर दशकों को सुचना दी जाती है कि अब खेल शुरु होने जो रहा है, दशकों के आने के बाद वंदना की जाती है। यह एक भारतीय परिपाटी है। वैसे लोक नाट्यों का कथावस्तु लिखी नहीं होती थी लेकिन कालान्तर म प्रस्तुतियों का प्रस्तुतीकरण की सुविधा के लिए इसे लिपिबद्ध कर लिया गया। प्राय: सभी आंचलिक नाट्यों म सम्पूण सामग्री लिखित नहीं होती, यानी सक्रिप्ट नहीं होती, पिढ़ी दर पिढ़ी से ये लोक नाट्य प्रस्तुतियां दशकों के सामने प्रस्तुत होती रहती है। दशकों की बदलती अभिरुचि के अनुसार लोक नाट्य प्रस्तुतियों के संवाद यथानुसार जोड़ दिए जाते ह। परन्तु परम्परा को कायम रखने के साथ उनकी ग्रहणशीलता नहीं खोई जाती। इन प्रस्तुतियों का प्रदशन प्राय: गाँव म ही होता है, जहां यातायात की असुविधा होती ह। अत:

ये लोक नाट्य देर रात तक चलते रहना ज़रुरी थे | यदि नाटक केवल संवाद एवं कथानक पर आश्रित रहे तो दो-तीन घण्टे म ही समाप्त हो जाए अत: नृत्य एवं गीतों का प्राचुय छोटे कथानकों के दायरे को भी विस्तृत कर देता है, इसलिए दशकों को मनोरंजन के साथ-साथ सुविधा एवं आनंद दोनों मिल जाते थे |

हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्यों का प्रमुख आधार उसका गीत-संगीत है | लोक नाट्य निहित गीत म लोक जीवन की सुरुचिता सौन्दयात्मक स्वर उसकी आध्यात्मिक अपूवता उनकी मनोरम चपलता मुर्तिमान होती है | वस्तुत: गीत लोक-संस्कृति का दपण है और संस्कृति के विकास का भव्य इतिहास भी गीत-संगीत, लोक जीवन के हर अंग म रची-बसी है |

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार सम्पूण ब्रहम्मांड, सम्पूण सृष्टि ही "नाद" से उत्पन्न है, "नाद" ही जगत म व्याप्त है और वही परायोनि है -

"ध्वनि योन पराक्षेया ध्वनि सवस्धकारणं आक्रान्त
ध्वनिन् सव जगत स्थावर जगमय्-वृहद्देशी"

नाद यानि (sound) दो प्रकार के होते है, पहला 'भाषा' से दुसरा 'गीत' से गीत का भाव बोधक है | संगीत लोक नाट्य का प्रमुख गुण है | हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्यों म अपने क्षेत्र की मिट्टी की सुगन्ध लिए लोक गीत अत्यन्त आकषक ढंग से पिरोया रहता है |

जब मनुष्य प्राक्रितिक सौन्दय से अभिभूत होता है, तो आन्नद के उस क्षण म उसके मुख से निकली वाणी स्वत: जीवन से लय, पवन

से गति, भौंरों से गुंजन, पक्षियों एवं कल-कल करती नदियों से संगीत आदि गुणों को समेटकर फुट पडती ह |

गीत-संगीत मानव हृदय का राग है, जो आत्मानुभूति के लिए प्रेरणा देता है, वेदना या आनंद की पराकाष्ठा ही गीत का सृजन बिन्दु है, गीत-संगीत अपने-आप बनते ह | समस्त शब्दों का कारण ध्वनिमय "ओंकार" है इसी अशब्द संगीत से स्वर सप्तकों की भी उत्पत्ति हुई |

लोक नाट्यों म गीतों का एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक महत्व होता है | इन गीतों से दर्शकों की मनोरंजनी वृत्ति की भी तृप्ति होती है, यानि लोक नाट्यों म दर्शकों की अभिरुचि अनुसार गीतों की भी अहम भूमिका रहती है, ताकि तनावपूर्ण दृश्य म भी वो अपने आप को बोझिल महसूस न कर |

नकारे की ज़ोरदार आवाज़ और नरसिंगे की ध्वनि दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देती है और अपनी दमदार प्रस्तुति के कारण प्रस्तुति अपने लक्ष्य को पोने म सफ़ल होती है, और दर्शक घंटों, कभी-कभी रात भर बैठकर उसका आनंद प्राप्त करत ह |

मेरे शोध का विषय "हिमाचली लोक नाट्य कलाओं का तुल्नात्मक अध्ययन एवं उनका आधुनिक रंगमंच म महत्व है"| क्योंकि म हिमाचल प्रदेश का रहने वाला हुँ इसलिए म अपनी लोक संस्कृति को भली-भांति जानता समझता हुँ | मने हिमाचल प्रदेश के प्रमुख लोक नाट्यों को अपने शोध अध्ययन के लिए चुना है, जिसम प्रमुख ह शिमला, सिरमौर एवं सोलन की लोक नाट्य शैली "करियाला", मण्डी

एवं बिलासपुर का "बाँठडा", काँगडा जिले का लोक नाट्य शैला "भगत" शामिल ह।

लोक नाट्य को जानने से पहले ये जानना आवश्यक है कि 'लोक' क्या है और लोक नाट्यां का उत्पति कैसे हुई।

लोक

लोक एक अत्यन्त प्राचीन शब्द है। जो एक विशिष्ट स्थान के जन समुदाय का ओर इंगित करता है। वैसे अंग्रेजी के (folk) का प्रयायवाची है "लोक" या हम इसका अथ ग्राम एवं जन से भी लगा सकत ह। "लोक" शब्द का अथ उस जन समुदाय से है, जो विस्त्रित रुप म इस धरती पर फैला हुआ है, जिसम सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित होते ह, परन्तु आज "लोक" शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट स्थान के जन समुदाय का ओर संकेत करता है। "लोक" का प्रयोग वोदां तथा उपनिषदां आदि ग्रन्थां के समानान्तर भी मिलता है। कालान्तर म लोक का व्यापकता बढती गई, हमारे मनीषी वेद का चचा करते समय लोक का भी ध्यान रखने लगे। जैमिनीय उपनिषद म लोक के सम्बन्ध म कहा गया है कि ये अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु म व्याप्त है।

"बहु व्याहिता वा अयं बहुतो लोक"

हमारा ग्रामीण समाज “लोक” का महाप्राण है और ग्रामीण संस्कृति “लोक” का प्रतिनिधित्व- सा करती दिखाई देती है जन द्वारा जन के लिए रचा गया अथात् जो जन समुदाय इस काय को करता है, “लोक” कहलाता है, और वो काय जिसका व्यवहारिक ज्ञान पुस्तकों पर आधारित न होकर परम्परा द्वारा प्रतिष्ठित है|

भरत मुनि के “नाट्य शास्त्र” से इतना तो स्पष्ट है कि भरत मुनि का “नाट्य शास्त्र” का आधार लोक कलाएं ही रहे होंगे, क्योंकि हमारे देश की लोक कला एवं संस्कृति हमेशा से समृद्ध रही ह| विविध उत्सवों, अनुष्ठानों, त्यौहारों, मेलों तथा धामिक संस्कारों म लोक जीवन अपने बहुरंगी उल्लास म उमड़ पड़ता है और नृत्य की भंगिमाओं एवं संगीत की स्वर लहरियों म भाव विह्वल हो अपने समग्र जीवन की सुखांत शाश्वता को साकार हुआ देखता है|

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ और मनोरंजन के ये साधन स्थायित्व ग्रहण करने लगे, विविध भाव-भंगिमाओं ने इन्हे एक नई भूमिका दी जो आगे चलकर लोक नाट्यों, लोक कलाओं के रुप म विकसित हुई| नाट्य विधा के वतमान विकसित स्वरुप के पिछे, परम्परा, प्रयोग और प्रगति की समृद्ध पृष्टभूमि है

लोक- नाट्यों के स्रोत

लोक-नाट्यों के स्रोत, लोक जीवन के सहज संस्कार ही है| धामिक अनुष्ठान, मेले, त्योहार, फ़सल का प्रारंभ या समाप्ति की सुखदता आदि लोकानुरंजन के ऐसे मूलभूत बिन्दु ह, जिनसे लोक नाट्यों की अनन्त सलिला प्रस्फुटित होती है| गाना जहां कहीं भी,

कोई वग अथवा जनसमुदाय हो, एकत्र होता है, वहां कई संस्कृतियों की विराट परम्पराएं परस्पर मिलती और विस्तार पाती है। यही विस्तार धीरे-धीरे सामूहिक अभिव्यक्ति का जनमंच बन गया और जनसमाज ही इसका सजक हुआ।

लोक-नाट्यों की उत्पत्ति-

भारत की प्राचीन परम्पराओं में नाट्य का अथ आज की भांति नाटक नहीं था। नृत्य के द्वारा अभिव्यक्त की जाने वाली क्रियाओं को नाट्यम् कहा जाता था, परन्तु आदि काल से ही मनुष्य को अपने भरण-पोषण के लिए हमेशा श्रम करना पडता है। श्रम को सरस एवं सुखद बनाने के लिए उसने अनेक कलाओं को जन्म दिया और इस कला-सृष्टि में प्रकृति सदा सहायक रही है। अपनी छाया को हिलाने और उसमें विभिन्न मुद्राएं बनाकर क्रीड़ा करने से आदि मानव को सुख की प्राप्ति हुई और इस प्रकार अनुकरण की भावना से नृत्य का जन्म हुआ।

हिरण की चौकड़ी, हाथी की मदोन्मत्त चाल, सांप की लहराती गति, मढकों की उछाल, मोर की थिरकन और खुली हवाओं के संदेश से मानव को हरियाले रंगमंच पर क्रिड़ा करने की प्रेरणा मिली। साथ ही काल की गति से ताल और प्रकृति की मादक मुस्कान से उसे स्वर निधि प्राप्त हुई।

आगे चलकर प्लेटो ने यह सिद्ध कर दिया कि कला प्रकृत्ति के क्रियाकलापों पर आधारित है। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि-

"मंडलाकार नृत्य आकाश म चलने वाले नक्षत्र मंडल का अनुकृति है"|

लोक नाट्य का उत्पत्ति विभिन्न धारणाओं के बीच हुई जैसे लोक विश्वास, लोक प्रचलन, धामिक सामारोह एवं रुढियां, पीरपूजा, मनोरंजन एवं मांगलिक पव आदि| नाट्य के स्वरुप वाले आंगिक अभिनय से सहचरित यह नृत्य गीत से संयुक्त हुई और बाद म संवाद से उत्पन्न हुई, यहा नाटक के उद्भव का कारण रहा होगा| लोक नाट्या का उदय मनोरंजन, धामिक प्रचार, अनुष्ठानिक एवं लौकिक पूजा-अचना, लोक वातागत, विश्वास, प्रचलित आख्याना एवं कथानका को लेकर हुआ होगा|

करियाला

करियाला हिमाचल प्रदेश के शिमला, सोलन और सिरमौर ज़िले के कुछ इलाका से सम्बंधित है । करियाला हिमाचल प्रदेश का मंचहान लोकनाट्य है, जो नाटक एवं संगीत के सभी अंग लिये हुए लोक कथाओं तथा दैनिक कार्या का जीता जागता चित्र है । यह यहां का हा क्षेत्रिय भाषा म हा प्रस्तुत किया जाता है । संवाद के साथ इसम लोकगीता व नाटका का मिश्रण होता है । हास्य करियाला का प्राण है । विविधता इसका गति, नाटा हृदय और नाफारा, हिरणसिंगा, करनाल आदि वाद्य इसका भवनाओं का मुखरता है । इसम भाग लेने वाले कलाकारा का सबसे बड़ी विशेषता यह है का वे विशेष नियमा एवं मान्यताओं के बंधनो को तोड़ते हुए प्रकृति के समान मुक्त बने रहते ह । अत: प्रत्येक पात्र कथानक के अनुरूप मनमाने संवाद गढ़ता हुए चलता है ।

प्रांगण के कुछ भाग के चारों तरफ छोटे-छोटे खंबे खड़े करके उसमे एक रस्सी बांध कर एक चॉकोर वग बना लिया जाता है । चाहे कोई भी ऋतु हो, आग जलाई जाती है । इसे पवतीय भाषा म 'घयाना' कहते ह। इस आग को पवित्र माना जाता है । कुछ दूरी पर छोटे तम्बू या घास का छोटा सा छप्पर अभिनयकताओं के मेकअप के लिये बना रहता है । दशक चारों तरफ आसीन होते ह । ये लोक नाट्य अपने म एक विशेषता छुपाए हुए ह । ना रंग-बिरंगे परदे इसे ओट म लिये हुए ह, ना यह समय के घेरे म है ।

करियाला म एक ही कथानक रंगमंच के नाटक अथवा चलचित्र की भांति नहीं चलता वरन् इसम रेडियो रूपकों की तरह छोटे छोटे अंश होते ह । इन अंशो का कोई लिखित रूप नहीं होता । करियाला म ऐसी हालत म जबकि लोग सुशिक्षित ना हों, बिना किसी लिखित रूप के केवल करियाल्टू के निदशन पर प्रस्तुत करना कोई सरल कला नहीं है। करियालचियों को आप किसी भी समय, किसी भी स्थान पर अपने द्वारा ले जाने वाले अंशो म से किसी भी अंश को प्रस्तुत करने के लिये कह दिजिये, आपको संवाद म तनिक भी अंतर नहीं मिलेगा । यह पवतीय क्षेत्र के रहने वाले कलाकारों की उत्तम सम्मरणशक्ति तथा नाट्यकला के प्रति उनकी अगाध रुचि का प्रमाण है ।

यह पवतीय प्रचलित वाद्यों पर बजाई गई जगताल से आरंभ होता है । वादक खुले स्थान पर एक ओर बैठ जाते ह । स्वांग आरंभ होने के लिये जगताल की समाप्ति पर करियाला ताल बजता है और सभी चंद्रावली (लक्ष्मी) थाली म जले धूप-दीप लिये अखाड़े म प्रवेश करती ह । एक हाथ आकाश की ओर करके सरस्वती का आह्वाहन

करते हुए वाद्‌यो को छूती ह और अखाड़े के बीच जली आग के चारों ओर करियाला ताल म नाचती है ।

पुरुष कलाकार ही स्त्रियों की भेश-भूषा म चंद्रावली बनता है| चंद्रावली का यह नृत्य दस मिनट तक चलता है, इसके जाने के बाद पहाड़ी धुने बजती रहती ह । इसी समय कलाकार स्वांग करके भीड़ को चीरते हुए अखाड़े म प्रवेश करते ह जो वाध्यों का अभिनंदन कर अग्नि के चारों ओर घूम कर अपने स्वांग प्रस्तुत करते ह। इन स्वांगों की कोई अवधि नहीं होती। करियाला का कोई निदशक नहीं होता|

उद्‌गम एवम् विकास

करियाला के विषय म कोई नहीं जानता कि यह लोक नाट्‌यशैली कहां से आई? करियाला के बारे म यह जानना मुश्किल है कि इस लोकनाट्‌य शैली ने कैसे और कब प्रस्तुति का रूप ले लिया? एक मत के अनुसार यह लोकनाट्‌य शैली पंद्रहवी और सोलहवीं शताब्दी म वैश्नव भक्ति आंदोलन के साथ उत्पन्न हुई। कुछ विद्‌वानों और करियाला कलाकारों का मानना है कि यह बहुत प्राचीन है, उतना ही प्राचीन जितना भरत मुनि का नाट्‌य शास्त्र है।

'करियाला' एक है परन्तु नाम अनेक । पहाड़ी जन इसे 'करियाड़ा', 'कराड़ा', 'करयला' और 'कराला' भी लिखले-बोलते ह । सोलन क्षेत्र के अनेक भागों यथा, अर्की, धामी, आदि म निम्नवग के कलाकारों द्‌वारा प्रदर्शित होने के कारण करियाला "धाजा" भी कहलाता है ।

"करियाला" नाम और इससे संबंधित लोकनाट्‌य परम्परा की व्युत्पत्ति एवं प्राचीनता के विषय म प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती । प्रदेश के कतिपय लोकवाताकारों ने इस दिशा म बोद्धिक व्यायाम करते हुए

कुछ सतही निष्कष ज़रुर निकाले ह । करियाला म नौटकी, भगत, भवई जैसे लोकनाट्यों की शैली का अभिनय निस्संदेह इस परम्परा को नाट्य-रासक की उस लोकधर्मी अभिनय परम्परा से संबद्ध करता है जो अपभ्रंश भाषाओं के विकास काल म "फागु" बनी । लोकधर्मी नाट्य-परम्पराओं मे अपभ्रंश भाषाओं का योगदान गुजरों, अभीरों के सांस्कृतिक ब्याज से- महत्वपूण है । अत: अपभ्रंश भाषाओं के विकास काल म गुजरात व राजस्थान की लोकधर्मी नाट्य-परम्पराओं ने पहाड़ी नाटकों को प्रभावित किया हो तो कोई आश्चय नहीं ।

"करियाला" शब्द की व्युत्पत्ति पहाड़ी भाषा के अनेक भूत अर्थों म यथा 'करेल', (कुरेदना, खोजना), 'करौला' या 'करोला' (उलटना, पलटना, सचेत करना) 'करेला' (छेड़छाड़) आदि शब्दों से की गई है । उपरोक्त शब्दों के निहित अर्थों म "करियाला" जीवन की गहराई से खोज करने, जीवननुभवों को गम्भीरता से विश्लेषित करने तथा हास-परिहास पूण वाता म अभिव्यक्त करने का साधन माना जा सकता है । एक विद्धजन ने "करियाला" को स्थानिय शब्द "करेल" (मनौती) से व्युत्पन्न माना है । उनके मतानुसार देवता की "करेल" (मनौती) पूर्ती का लोकरंजन रुप ही करियाला है । कुछ विद्धवानों ने "करियाला" या "कराल" का सम्बंध अनेकाथ संस्कृत शब्द "कराल" (भयानक/डरावना /हरिण जाति के पशुओं/ असुरों-देवों-गनधर्वो) से सम्बंधित करते हुए इसे प्रदेश की आदिम जनजातियों द्वारा प्रदर्शित भयानक (मुखौटाधारी) नाट्य बताया है ।

एक और मतानुसार- इस नाट्यशैली की उत्पत्ति राजा जुनाग के समय से हुई । राजा जुनाग को वहाँ का देवता मानते ह । राजा जुनाग का महल छोटे से शहर सपाटू म स्थित था जो अभी सोलन

ज़िले म ह । उस समय सपाट्र को गढ़ नाम से जाना जाता था क्योंकि जुनाग का क़िला वहां काफ़ी समय तक रहा।

राजा जुनाग के महल के बाहर खेत खलिहानो म काम करने वाले बेगारी (मजदूर) लोग काम करते थे। वो लोग देर रात तक काम करते थे। रोज़-रोज़ एक ही तरह का काम करते-करते वो उदासीन हो जाते थे, यह टोरी लोग (वहां की निचली जाति के लोग) जब थक जाते थे, तो आराम करते समय वह गाना गाने लगते थे। वह लोग नये गाने भी बनाने लगे। धीरे धीरे दूसरी जाति के लोग भी उनके साथ गाने लगे। वह लोग चुटकुले बनाने लगे, चुटकुले बनाते वक्त वह दूसरों की नकल करने लगे। वह लोग रोज़मरा की जिंदगी के कुछ वाक्यों को, बहुत ध्यान से देखते थे और उसे धीरे-धीरे प्रर्दाशत करने लगे। धीरे-धीरे दुसरे लोग भी इसे देखने लगे। यह देख कर दशकों को आनंद की अनुभुति हुई।

राजा जुनांग इस आनंद की गवाही देता है। देव जुनाग ने प्रदशन का स्थल मुक्तांगन रखा ताकि ज्यादा से ज्यादा से ज्यादा लोग इस लोक नाट्य शैली का आनंद ले सक, देवता जुनांग उन लोगों को इस नाट्यशैली को प्रोत्साहित करता है। राजा इस नाट्य प्रस्तुति से बहुत खुश हुआ। राजा ने इस कला को अन्य लोगों के सामने प्रर्दाशत करने के लिये कलाकारों को प्रेरित किया। राजा जुनांग को देव बिज्जू के प्रति अपार श्रद्धा थी इसलिये जुनांग ने उनके सम्मान के लिये एक कायक्रम रखा जिसम इन कलाकारों ने हिस्सा लिया। इस लोक नाट्यकला शैली को करियाला नाम से जाना गया। करियाला खेलने वाले लोग मुख्यत: निचली जाति के लोग ही होते थे।

धीरे-धीरे यह लोग दूसरे राजाओं के महलों मे भी प्रदशन करने लगे। यह लोग मंच पर मुख्यत: खाली हाथ ही प्रदशन करते थे।

पुराने समय म करियाला का प्रदशन लगभग 16 दिनों तक चलता था। हर दिन नय प्रदशन होते थे। करियाला की पहली लोकप्रिय पार्टी का नाम था “गढ़िया पार्टी” और उसी को “करीयालची” के नाम जाना गया। ये गढ़िया पार्टी राजा के सामने प्रदशन करती थी, उसके बदले म उन्ह उपहार के रुप म खाना, कपड़े एवं गहन आदि मिलते थे। यह प्रदशन दशहरा एवं दिवाली के दिनों म परंम्परा के रुप म खेले जान लगे क्योंकि इस समय खेतों का काम लगभग ख़त्म हो जाता था। लोक भाषा म अभिनय स्थल को “अखाड़ा” कहा जाता है। दशक खलिहान म बैठते थे। प्रदशन स्थल को मिट्टी एवं गाय के गोबर से लिपा-पोता जाता था।

करियाला के पारंपरिक तत्व :-

जुनांग देवता ने करियाला लोक नाट्यशैली के कलाकारों को कुछ तत्व दिये जो निम्नलिखित है -

1. नगाड़ा
2. दोहतर
3. जालपा माता की मूर्ति
4. दो तलवार

यह करियाला पार्टी जहां भी प्रदशन करती थी, सारा सामान अपने साथ ले जाते थे।

घ्याना

करियाला प्रदशन के दौरान प्रदशन स्थल के बीचो- बीच आग जलाई जाती थी। यह आग करियाला स्थल को गम रखने म सहायता प्रदान करती है। यह आग एक तरह का पूजा का प्रतीक थी।

हवन

यह एक प्रकार का पूजा का सामग्री होती है । इसम घी, चावल, तिल, गेहूं, गुड़, शहद आदि होता है। इसे एक पत्ते म रखा जाता है जिसे पत्तल कहते ह ।

कलाकार

करियाला प्रदशन करने के लिये कम से कम बारह कलाकारा का ज़रूरत होती है। कभी-कभी इन कलाकारा का संख्या बढ़ कर बाईस या तेईस तक भी हो जाती है। यह कलाकार चार जातिया से संबंध रखते ह -

1. कोला- कोला, कोरा, और कोल भारत के मूल निवासी ह, इनका अतीत एक है । उन्ह मनुस्मृति के प्रावधाना के तहत अलग-अलग नाम और व्यवसाय दिए गये । कुल मिलाकर, बुनकर, भगत, जुलाहा, अंसारा आदि समुदाया का भांति कोला भी पारम्परिक रुप से जुलाहे ह । ये बिना वेतन पर और बेगार (forced labour) के तौर पर काम करते थे । कोला जाति के लोग कशमीर से लेकर कन्याकुमारा तक मिलत ह । लेकिन क्षेत्रिय भाषा के प्रभाव के कारण उनके नाम तनिक परिवतित हो गय ह|

2. लुहार- इस जाति के लोग लोहा या इस्पात का उपयोग करके

विभिन्न वस्तुए बनाते ह, हथोड़ी, छोनी आदि का प्रयोग करके फाटक, ग्रिल और खेती के औजार आदि बनाते ह | इस जाति के लोग भी हिमाचल के लगभग सभी ज़िलो म पाये जाते है | लेकिन अभी कुछ लुहार लोग केवल लोहे का काम ही नही करते वरण वो अब लकड़ी एवं घर बनाने का काम भी करने लगे ह |

3. टोरी- इस जाति के लोग कारिगर होते ह, ये लोग बांस के बतन आदि बनाते है | ये जाति भी निम्न श्रेणी म आती ह, मण्डी जिले म इस जाति को मझयाड़ा भी कहते है | ये बहुत ही कुशल कारीगर होते है | ये जाति हिमाचल के कुछ जिलो म ही पाई जाती है |

4. चमार- आज जिन्ह हम चमार जाति से जानते है और जिसके साथ छुआछूत का व्यवहार करत है, दरअसल वह वीर चंवर वंश क्षत्रीय ह | जिन्ह सिकन्दर लोदी ने चमार घोषित करके अपमानित करने की चेष्टा की | प्रचीन काल म न तो चमार कोई शब्द और न ही इस नाम की कोई जाति | इस जाति के लोग ज्यादातर चमड़े का काम करत ह | ये जाति हिमाचल के लगभग सभी ज़िलो म पाई जाती है |

टोरी लोग वाध्य यंत्र बजाते ह और दूसरी जाती के लोग गीत, नृत्य एवं अभिनय करते ह।

<u>वादय यंत्र</u>

करियाला में निम्नलिखित वादय यंत्र बजाए जाते ह :-

1. <u>नगाड़ा</u>- नगाड़ा करियाला का प्राण है| इसकी लय म ही सम्पूण सफ़लता निहित है| नगाड़ा तांबे का बना तथा भस की खाल से

मढ़ा होता है। नगाड़े पर गति पूण ढ़ग से लय की अनुमति देते हुए सरल एवं जटिल सभी प्रकार के ठेके बजाये जाते ह, ढोली लोग नगाड़ा बजाने म प्रवीण होते ह ।

2. <u>ढोल</u>- ढोल लकड़ी का बना होता है, इसके दोनों तरफ़ खाल मढ़ी होती है,जो बकरी या भेड़ की खाल होती है। इसे हाथों एवं छडी से बजाया जाता है। डोरी म छल्ले रहत ह जो ढोल का स्वर मिलान म काम आते ह। चमड़े अथवा सूत की रस्सी से इसको खींचकर कसा जाता है यह गायन एवं नृत्य के साथ बजाया जाता है।

3. <u>करनाल</u>- यह वाद्य यँत्र मुंह से बजाया जाता है, ये पीतल का होता है। इसे एक सांस म बजाया जाता है इसकी ध्वनि दूर तक जाती है। इसे बजाने के लिए बहूत लंबी सांस की ज़रुरत होती है, देवी-देवतोओं के मांगलिक अवसरों पर भी इसे बजाया जाता है।

4. <u>नफारी</u>- नफ़ारी एक फूँक वाद्य यँत्र है, इसका शुद्ध नाम शहनाई है, यह लकड़ी की बनी होती है जिसमे आठ छेद होते ह। इसे मुंह म दबाकर फूँक के माध्यम से मधुर स्वर म बजाया जाता है, इसे बजाते समय मुंह म निरंतर स्वास रहना चाहिय, और स्वरों के लिए स्वास आती रहनी चाहिए, इसलिए नाक से बराबर स्वास लेना पड़ता है, इसलिए इसे नकसांसी भी कहते है। शहनाई की मीठी व तीखी आवाज़ दूर तक सुनाई देने वाली होती है। इसके साथ ताल वाद्यों म नगाड़े और ढोल की संगति की जाती है।

इसके अलावा कोई और वाद्य यंत्र कारियाला म उपयोग नहीं होता। अब हारमोनियम भी इसमे शामिल हो गया है।

करियाला प्रस्तुति

करियाला का नाट्य प्रस्तुति का प्रारंभ करियाला ताल के साथ होता है। इससे तुरंत पहले जगताल होता है। करियाला ताल और जगताल लगभग पांच से दस मिनट का होता है। इसे करियाला का पूवरंग भी कह सकते ह।

चंद्रावली नृत्य

चंद्रावली एक स्त्री चरित्र है जो एक विशेष रिवाज़ के साथ अखाड़े म प्रवेश करती है । चंद्रावली, नृत्य के साथ अखाड़े म प्रवेश करती है । इस नृत्य को चंद्रावली नृत्य कहते ह चंद्रावली का चरित्र पुरुष कलाकार ही करता है । यह एक टोपी पहने हुए होता है इसलिये इसे टोपीवाला भी कहते ह । कलाकार नीचे झुक कर अपने दाएं हाथ से धरती को स्पश करता है और अपने माथे पर लगाता है । यह चंद्रावली नृत्य दस से पंद्रह मिनट तक चलता है । चंद्रावली नृत्य के बाद स्वांग शुरु होते है ।

स्वांग

सारे स्वांग सिलसिलेवार शुरु होते ह । चंद्रावली नृत्य के तुरंत बाद वैरागी-सन्यासी का स्वांग शुरु होता है । करियाला म बहुत सारे स्वांग ह। यह नहीं है कि सारे स्वांग प्रदशित हो । यह स्वांग समय, दशकों और कलाकारों पर निभर करता है की एक रात म कितने स्वांग प्रदशित करे । कुछ पारंपरिक स्वांग निम्नलिखित ह :-

1. वैरागी-सन्यासी का स्वांग-
2. झुलना
3. साहब का स्वांग

4. ताऊ-ताई का स्वांग
5. गंगी-सुंदर का स्वांग
6. लम्बरदार का स्वांग
7. जुलाह-जुलाहिन का स्वांग
8. साहुकार का स्वांग
9. चमार-चमारिन का स्वांग
10. जोगी-जोगिन का स्वांग
11. राजपूत का स्वांग
12. ब्राह्मण का स्वांग
13. बंगाले का स्वांग
14. गुड्डा-गुड्डीन का स्वांग
15. ऊंट का स्वांग
16. कुली का स्वांग
17. बादल का स्वांग
18. नट-नटी का स्वांग
19. खबर

उदाहरण के लिए ये स्वांग प्रस्तुत है-

बैरागी- सन्यासी का स्वांग-

बैरागी और संन्यासी साधुओं की दो अलग-अलग श्रेणियां है। ये स्वांग इन्हीं से सम्बंधित है। करियाला ताल एवं चन्द्रावली नृत्य के तुरन्त बाद यह एक आलाप से शुरु होता है। बैरागी अखाड़े के बाहर दर्शकों के सामन खड़े हो जात ह। जिसे संस्कृत नाट्यों म नेपथ्य कहा जाता है। समय बितने के साथ-साथ एक करयालची बैरागियों का झुण्ड के सामन, दर्शकों की तरफ मुंह करके खड़ा हो जाता है।

ये कारियालची एक कंम्बल को अपने कन्धां पर रखकर दोनां हाथां से पकड़े होता है, जो एक पद के रुप म काय करता है । फिर आलाप के बाद स्वतंत्र शैला म एक दोहा गाना शुरु कर देता है, जो इस तरह से होता है-

“आद तेरा बौहरा रो गौरा पुत्र गणश
पं............पंच देव रक्षा कर
जो ब्रह्मां, बिश्णु, महेश।”

एक और भक्ति रस का दोहा गाया जाता है-

“आ.........
राम नारायण तुम बड़े, तुम से बड़ा न कोई ।
भक्ति करो श्री राम का, जो पार उतारा होई ।”

तब कुछ बैरागी हरे राम, हरे राम का शोर करत ह । उसके बाद बैरागी कदम-दर-कदम लयबद्ध नृत्य के साथ एक लाइन म अखाड़े म प्रवेश करत ह । उसके बाद उन सभी वस्तुओ को छुत ह, जिन्ह चन्द्रावला न छुआ होता है, ये उन्ह दाहिन हाथ के साथ माथे पर संपर्क करत ह । उसके बाद अखाड़े के भीतर गोल घेरे म घुमत ह, फिर सभी एक झुण्ड म पैरां के बल धरती पर बैठ जात ह। कुछ बैरागी चिलम पीने का अभिनय करत ह । नेपथ्य से अखाड़े म प्रवेश करते समय बैरागी ढोल का ताल और एक दोहे के साथ लयबद्ध नृत्य करते हुए प्रवेश करत है-

“जोगी का नगरिया बसे भी न कोई रामा
जो भी बसे सो साधु होए”

जोगी साधुओं का एक अन्य वग है, दोहे के बाद बैरागी हरे राम-हरे राम का शोर मचात ह, जिससे पुरा माहौल बदल जाता है ।
एक बैरागी समुह से अलग धरती पर बैठ जाता है, जो गुरु होता है, उसके हाथ म मोरपंख का झाड़ू होता है जिसे “मुद्रा” कहते ह।
झुण्ड म से एक बैरागी आता है जिसका नाम पुरबिया होता है उसका एक और नाम है मज़ाकिया।

मज़ाकिया गुरु के साथ बात करना शुरु करता है और चारां ओर घुमता रहता है और समुह के सदस्यां के साथ, गुरु द्वारा बोला जाने वाला आध्यात्मिक बातां को दशकां के सामने दोहरे अर्था म पेश करता है । गुरु उससे कहता है कि अगर तुम कुछ पुछना चाहते हो तो पुछो, मज़ाकिया दोहरे अर्था म संवाद बोलता है । एक तरह ये दशकां के लिए मनोरंजन का स्रोत बन जाता है ।

अंत म गुरु कहता है कि उसे तीन चीज़े चाहिये, पहला शुद्ध ज़मीन, दुसरा शुद्ध पानी और तीसरा एक सुनसान जगह बैठने के लिए ।
उसके बाद मज़ाकिया अखाड़े म गोल चक्कर लगाता है और दृश्य परिवतन करते हुए एक गांव म प्रवेश करता है । एक अन्य चरित्र बाबू का प्रवेश होता है, मज़ाकिया इससे बात करता है और गुरु का तरह उससे तीन चीज़े मांगता है । लेकिन मज़ाकिया चीज़े का जगह जीजे कहता है जो हसीं का कारण बनता है । सन्यासी मज़ाकिया से उसके उच्च ज्ञान का परिक्षा लेता है, जैसे-

“कहां से तुम जोगी आए
कहां तुम्हारा भाव
कहां बहन, भतीजी

कहा धरोगे पांव"

तब मज़ाकिया स्थानिय बोली म कहता है कि "फसी गयो" लेकिन वो जबाव दे देता है-

"दक्षिण से जोगी आए
उत्तर हमारा भाव
धरती हमारी बहन- भतीजी
यहां धरग पांव"

सवाल का जवाब देने के बाद मज़ाकिया ये संवाद बोलता है-

"पीओ री खिचड़ी खाओ
मेरे भाइया सैला जागण जाओ
और सारा दिन कुनिहार बैठी के
बामणां रा छोरु गाओ"

जिस लय म सवाल किया जाता है उसी लय म उसका जवाब भी दिया जाता है । मनोरंजन के साथ-साथ दशकों को भारतीय पौराणिक कथाओं और भारतीय दशन का ज्ञान भी प्राप्त होता है । सवाल-जवाब के बीच-बीच म मज़ाकिया मज़ाक करता रहता है, स्वांग का अन्त नाटी या गान के साथ होता है ।

स्वांग एक तरह की नकल है । जो करियालची अपने ढ़ंग से करते ह । वह लोग अपने आस-पास और अपनी रोज़मरा की जिंदगी के चरित्र चुनते ह । प्रस्तुति को मनोरंजक बनाने के लिये करियालची वहां की समाजिक, आथिक और वहां की समसामायिक परेशानियां को

अपनी प्रस्तुतियां म पिरोते ह । स्वांग मुख्यत: हास्य रस म हा होते ह । प्राय: संवाद स्थानीय बोला म बोले जाते ह । करियालची, जो इन स्वांगा म भाग लेते ह, उन्हे स्वांगी कहा जाता है| आज कल करियाला लुप्त मात्र है । कुछ कलाकारा ने कुछ और स्वांग भी बना दिय ह, इनम टेलाविज़न और फिल्मा का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है । चंद्रावला नृत्य एक पारंपरिक नृत्य है इसलिये वह अभी भी प्रदशित किया जाता है । चंद्रावला नृत्य के तुरंत बाद वैरागी-सन्यासी का स्वांग होता है । करियाला का स्वरूप आज के संदभ म घटिया और भोंडा होता जा रहा है ।

हिमाचली लोक नाट्य : भगत

भगत :-

लोक की अन्य परम्पराओं की भान्ति हिमाचल प्रदेश म लोक नाट्यों की परम्परा भी प्राचीन काल से ही काफ़ी समृद्ध एवं महत्वपूण रही है| नाट्य शास्त्र म जिस प्रहसन को शुद्ध एवं संकीण-प्रहसन के नाम से विभाजित किया गया है, उसम संकीण-प्रहसन ही लोक-नाट्यों अथवा सुआंगों के रुप म हिमाचल प्रदेश म अपनी पहचान बनाए हुए है| यही लोक-नाट्य सुआंगों, जन-नाटक अथवा लोक नाटक के रुप म हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों म विभिन्न नामों से अभिनीत होते ह| हिमाचल प्रदेश म जिन लोकधर्मी सुआंग-नाट्यों के रुप पनपे व विकसित हुए ह, उनम किन्नौर का "होरिड्ग-को" लाहौल-स्पिति का "बूचेन", सिरमौर सोलन एवं शिमला का "करियाला", महासू का "ठोड़ा", मण्डी एवं बिलासपुर का "बांठड़ा", ऊना का "बौरा", चम्बा का "हरणेतर", कुल्लू का "हरण" और कांगड़ा का "भगत" काफी प्रसिद्ध ह|

लोक- नाट्यों म जहां 'लोक' शब्द का प्रयोग बहुत विस्तृत एवं व्यापक अथ म होता हुआ घर-आंगन से लेकर गांव, नगर चौपाल यहां तक कि प्रांत अथवा स्थान-विशेष तक पहुंचता नज़र आता है, वहां इसम बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, समाज के सभी वर्गों के लोग "लोक" म समाहित होकर, आनंद-लोक म रस-विभोर होते दिखाई देत ह|

नाट्य शास्त्र के अनुसार "अवस्था के अनुकरण" के रुप म सुआंग का शब्दिक अर्थ "नकल" अथवा उपहास से परिपूण अभिनय से है| इस प्रकार लोक-नाट्यों को "ग्रामीण नाटक" अथवा "लोकमंच" भी कहा जाता है| लोक-नाट्य अथवा सुआंग एक ऐसा प्रदशन है, जहां आम जनता (लोक) को किसी स्थान विशेष पर इकट्ठा करके किसी भी कथानक को हास्य-वयंग्य के रुप म अभिनीत करके सभी का मनोरंजन किया जाता है|

लोक नाट्यों अथवा सुआंगों प्रयुक्त म होने वाली भाषा एवं उसके प्रस्तुतिकरण की शैली का प्रारुप पूव निर्धारित कदापि नहीं होता है| इसके संवाद अथवा अभिनय शैली पात्र विशेष के द्वारा उसी समय प्रसंग एवं परिस्थिति के अनुसार गढ़ी या बनाई जाती है| सुआंगों म वाक्-कला एवं अभिनय कला म चतुर तथा पारखी कलाकार ही अपना सिक्का जमाता है और लोगों को प्रभावित करके मनोरंजन भी करता है|

सुआंगों से सम्बन्धित लोकमंच का क्योंकि ग्रामीण परिवेश ही होता है इसलिए इसके संवादों तथा बोली के स्वरुप पर क्षेत्रीयता अथवा आंचलिकता का पुट अधिकांश मात्रा म देखने को मिलता है| कभी-कभी तो इन सुआंगों की भाषा इतनी असभ्य व भद्दी हो जाती है कि उनम गालियां, गुप्तांगों के नाम तथा दो-दो अथ निकलने वाले शब्दों व वाक्यों का इतना प्रयोग होता है कि महिला वग को इन सुआंगों का आनंद लेने से वंचित रहना पड़ता है| सुआंगों म क्षेत्रीय शब्दों के साथ-साथ हिन्दी, पंजाबी, उदू और अंग्रेजी के अतिरिक्त पश्तो भाषा तक के शब्दों का प्रयोग सुआंग के अनुरुप किया जाता है

और इन सब के पंचमेल से भाषा का जो स्वरुप बनता है, उसे पात्र-विशेष के द्वारा एक अलग-अंदाज या 'टोन' म अभिव्यक्त करने पर जिस आनन्द का अनुभूति होती है, वो वणन से परे का बात है|

लोकधर्मा सुआंगा के विभिन्न पात्रों का वेशभूषा, बनाव-श्रृंगार, आभूषण आदि यूं तो घटना व कथानक के अनुरुप हा होते ह परन्तु इन सब म सबसे अधिक महत्वपूण भूमिका निभाने वाला वह विदूषक अथवा जोकर किस्म का व्यक्ति होता है, जिसे विभिन्न लोक-नाट्यां म अलग-अलग नामां से जाना जाता है| इसका बनाव-श्रृंगार एवं हाव-भाव सबके आकषण का केन्द्र होता है| उसके कपड़े या तो कटे-फटे होते ह या उल्टे-सीधे पहने होते ह| यदि पट पहनी है तो इसका एक हा टांग होगी या डेढ़-टांग होगी| कहने को वह, न पट हा होगी और न हा निक्कर होगी| यदि पायजामा है तो वह फटा हुआ होगा या उसका एक टांग साबुत व दूसरा का सीलाई उधड़ी हुई अथवा लार-लार होगी| कमर पर उसने रंग-बिरंगी लार, लाल डोरियां, काले-दोड़ू का रस्सियां आदि बांध कर लटकाई होती ह| दाढ़ा-मूंछ कोकड़े या सण का सेल का अथवा मक्का का बालियां के सेल का बनाई-लगाई होती है| विदूषक के हाथां म दो अहम् वाद्य यन्त्र होते ह, जिसके कमाल वह लोगां को बजाकर दिखाता है और उनका भरपूर मनोरंजन करता है| पहला फटे हुए "बांस का डंडा", जिसे वह जब जाहे किसी वस्तु, व्यक्ति या दावार पर मारता है और उसका पटाक-पटाक से भरपूर आवाज़ निकालता है| इस फटे-बांस से आवाज़ तो भरपूर निकलती है, पर चोट नाम मात्र का हा लगती है| लोग आवाज़ सुनकर हा तथा संवाद से हा हंसी के मारे लोट-पोट हो जाते ह| इसके अतिरिक्त विदूषक के दूसरे हाथ म सींग के आकार का एक टेढ़ा-मेढ़ा, गोल-मोल एवं तुड़ा-मुड़ा सिंगीनुमा वाद्य-यन्त्र होता है,

जिसे फूंक देकर वह विभिन्न प्रकार का आवाज़े निकालता है| इसी के साथ-साथ इन लोक-नाट्यों म उस नतको का भी विशेश योगदान रहता है, जो कि स्त्री या युवती के वेश म पुरुष नतक ही होता है| यह सखी के रुप म नृत्य करने व ठुमका लगाने म इतना माहिर होता है कि इसकी अदाओं पर ही रीझ कर लोग ठनाठन पैसे बरसाने लगत है और “बेल-बलैयां” करवा कर फरमाइश करते ह|

भगत की उत्पत्ति एवं विकास:-

‘भगत’ की परम्परा बड़ी प्राचीन और विस्तृत है| उतर भारत के एक बहुत बड़े भू-भाग म ‘भगत’ लोक-नाट्य लम्बे समय से बहुत प्रसिद्ध मनोरंजन रहा है| अनेक स्थानों म नौटंकी, स्वांग और भगत म कोई अंतर नहीं किया जाता| किन्तु हिमाचल प्रदेश म ‘स्वांग’ और ‘भगत’ म स्पष्ट भेद है| स्वांग की कोई समरुप धारा नहीं है| स्थान-स्थान पर अलग-अलग ढंग के स्वांग प्रदशित होते है | परन्तु ‘भगत’ जहां भी खेला जाता है, इसका रुप साधारणतया समान रहता है| किसी समय “दरई, झीवर और चमार” आदि हरिजन जातियां भगत लोक- नाट्यों के प्रदशन म बड़ी निपुण थीं, और इन्हीं के माध्यम से ये प्रसिद्ध नाट्य जीवित रहा है|

“भगत का सवप्रथम उल्लेख ‘आइने अकबरी’ म मिलता है| ‘आईने अकबरी’ के अनुसार भगत कीतन के समान एक संगीत है परन्तु उसम विभिन्न प्रकार की वेशभूषा धारण करके असाधारण स्वांग का प्रदशन किया जाता है| भगत का दूसरा प्राचीनतम उल्लेख औरंगजेब के संकालीन मौलाना गनीमत की मसनवी ‘नैरंग इश्क’ म मिलता ह|

इस मसनवी का रचनाकाल सन् 1685 ई0 बताया जाता है| उपयुक्त साहित्योल्लेखों से ये स्पष्ट होता है कि भगत की परम्परा अत्यन्त प्रचीन है| परन्तु जिस रुप म आजकल भगत प्रचलित है, इस परम्परा का विकास सन् 1825 ई0 के आसपास हुआ होगा|”

‘भगत’ को वष म कभी भी खेला जा सकता है, परन्तु इसका सबसे उचित समय वही होता है, जब लोग खेत-खलिहान के काम से मुक्त हो जात है, और वष-भर के व्यस्त कामों के बाद मनोरंजन की लालसा होती है| दिवाली के बाद प्राय: ऐसा समय भगत के लिए बड़ा समुचित होता है जब आकाश निर्मल होता है, चांदनी रात म प्रकाश के लिए किसी विशेष स्थान की अधिक आवश्यकता नहीं रहती है और पहाड़ों म नदी-नाले शांत होते ह, तथा आने-जाने के साधन सुलभ होते ह| रात को लोग दूर-दूर से सहजता से पैदल दूरी पार करते हुए भगत के स्थान पर पहुंच जाते ह |

वैसे तो भगत-नाट्य कभी भी हो सकता है और होता है, भगत को आयोजित करने-करवाने की भी कुछ परम्पराएं ह| अधिकांश रुप म किसी पव-त्योहार अथवा विवाह-शादी के समय अथवा सदियों के दिनों म अधिकतर किसी भी मनोकामना के साथ किसी के भी द्वारा भगत के आयोजन को जोड़ दिया जाता है| इसके अतिरिक्त कई विशेष स्थानों पर किसी विशेष सुक्खणा (मनौती) की पूर्ती होने पर सामुहिक रुप से भगत का आयोजन करवाया जाता है| लेकिन इसे प्राय: ‘सुक्खणा’ (मनौती) के तौर पर देखा जाता है | गांव के समृद्ध लोग पुत्र पैदा होने पर या विवाह-शादी आदि अवसरों पर भगत-मंडली बुलाकर लोक-नाट्य भगत का प्रदशन करवाते ह| पहाड़ी लोग निश्चय ही धार्मिक विचार के होते ह| अपनी समस्याओं और दुखों को दूर

करने के लिए अथवा अपनी इच्छाओं का पूर्ता के लिए भगत लोग अपने इष्टदेव से प्राथना करते ह कि वो इन मनोकामनोओं का प्राप्ति पर भगत-नाट्य का आयोजन करंगे| भगत नाट्य का प्रमुख प्रयोजन यहा है| जिस किसी का मनोकामना पूरा होती है वो ग्रामवासियां और अपने रिश्तेदारां को निमंत्रण भेजता है | 'सुक्खणा' (मनौती) पूरा होने पर वो व्यक्ति दिन म यज्ञ करवाता है और रात म भगत करवाता है|

भगत के लिए कोई विशेष मंच नहां होता है| रात होते हा किसी खुले स्थान पर या जिस व्यक्ति का 'सुक्खणा' (मनौती) पूरा हुई है उसके आंगन म लकड़ियां के बड़े-बड़े ठेले-गठे इकट्ठे करके अलाव जलाया जाता है जिसे 'घियाना' कहते ह | 'घियाना' जहां शर्दा का ठण्डक से बचाव करता है वहां किसी हद तक प्रकाश का काम भी करता है | 'घियाने' के चारां तरफ ख़ाला स्थान छोड़ा जाता है जो भगत के कलाकारां के लिए मंच बन जाता है और कुछ दूर-दूर दशक चारां ओर बैठ जाते ह | धान के पुआल का बनी चटाईयां और दरियां आदि बिछाकर दशक साथ-साथ बैठ जाते है| आंगन के साथ हा जो कमरा होता है उसे मेकअप के लिए प्रयोग किया जाता है| यह 'नेपथ्य' का काम भी करता है |

कांगड़ा जिला म लोक-नाट्य 'भगत' का लोकमंच काफा समृद्ध एवं ख्यातिप्राप्त रहा है| भगत के डेरेदारां का एक लम्बी व अटूट विरासत विभिन्न भागां म रहा है| कई डेरेदारां के गुरु मुसलमान व मिरासी रहे ह, जिनके शिष्यत्व म भगतवालां ने नृत्य व संगीत के हुनर सीख कर अदाकारा का एक अलग हा नमुना लोगां के सामने प्रस्तुत किया है| भगत के निदशक को 'गुरुजी' कहते है | लेकिन

अब इसे 'उस्तीदजी या मास्टरजी' भी कहने लगे है | अन्य कलाकारों को 'भर्गातिया या भर्गातिए' कहा जाता है | स्त्री का पात्र पुरुष ही करते ह| फसलों का काम समाप्त होते ही गुरुजी अपनी मण्डली तैयार करता है, वो चतुर कलाकारो को इकट्ठा करता है जो अभिनय म निपुण होते ह, नाचन म अच्छे हों, गायन म अच्छे हों और सबसे अधिक खोज होती है 'मसखरा' या 'मज़ाकिया' की क्योंकि भगत की जान होती है मज़ाकिया| क्योंकि भगत की सफलता काफी हद तक इस पर निभर करती है| इसे अश्लील बात या प्रदशन करने की भी इजाज़त होती है | यह गाली-गलौच भी निकाल लेता है | परन्तु यह सब कुछ केवल हास्य और विनोद पैदा करने के लिए होता है|

भगत के लिए कोई निर्धारित पाठ (script) नहीं होता | कोई नियम, पद्धति या रिवाज नहीं होता| वे अपनी सुविधा और इच्छा के अनुसार दृश्य प्रस्तुत करते ह और दृशय म फेर-बदल करते ह | भर्गातिए आशुकवि और चतुर हाजिर-जवाब होते है | जहां कहीं 'सुक्खणा' (मनौती) की पूर्ती पर भगत का आयोजन किया जाता है, वहां व्यक्ति-बिशेष पहले ही गुरुजी को पास आकर कुछ पैसे भट रुप म दे जाता है जिसे 'साई' कहते ह | यह आवश्यक नहीं कि 'साई' की रकम अधिक हो, परन्तु कुछ रकम अवश्य दी जाती है जो प्राय: सवा- रुपया होता है| शेष राशि बाद म दी जाती है| जहां भगत का आयोजन मनौती के बजाए साधारण मनोरंजन के रुप म भर्गातियों द्वारा स्वंय किया जाता है, वहां थाली फिरा कर ख़च पूरा किया जाता है | दशक भी कलाकारों के अभिनय, नृत्य, गायन, स्वांग से प्रसन्न होकर उन्ह अपनी इच्छा से इनाम देते ह | कई बार "मुजरा" का अभिनय किया जाता है | "मुजरा" म दो-तीन पात्र स्त्री-पुरुष पहनावे म गाते और नाचते ह| तब लोग नोट आदि दिखा कर दान देते ह |

इसे 'बेल देना' या 'बेल करना' कहते ह| स्त्री पात्र नोट-पैसे लेकर साज़िन्दों पर घुमाकर नाच-गाना बंद करके यों गाता है-

"जय जननी ज्वालामुखी त खूब रचइयो खेल
लाला भगतराम ने एक रुपया दाना है बेल|
अगर कोई बेल बढ़ाएगा
सदा सुख-सौम्पत पाएगा" |

इसके अतिरिक्त भगत-मण्डली अनेक अन्य रुप से भी गाते ह जैसे-

"मेरे तबले दा खड़के कूणा
बेल करने वाले का रब बढ़ाए दूणा"|

तबला, हारमोनियम, नगारा, छैनियाँ, चिमटा और घुंघरु भगत के वाद्य यन्त्र ह| भगतिए घर से ही इन यन्त्रों के पूण संगीत म गीत गाते हुए चल पड़ते है| इसका संगीत नाट्य-प्रेमियों को निमंत्रण देता है| वादक घियाने के साथ के स्थान पर बैठ जाते ह|

यूं तो भगत का सम्बन्ध हरिजन जाति के लोगों के साथ जुड़ा है और इन्ह ही शिव-पावती, कृष्ण-राधा के वरदान के साथ-साथ पांडवों की 'सुक्खण' को उठाने का भी आशीवाद प्राप्त है परन्तु झीवर (मैहरा) जाति म भी नकल व सुआंग लगाने का परम्परागत हुनर काफी विख्यात रहा है और डेरेदारों की प्रथा म भगत के मंचन का भी वणन मिलता है| कोई समय वह भी था जब दो-दो मण्डली भगत होती थीं, जिनम हरिजन व झीवर मिलकर बारी-बारी से अलग-अलग

जातियों को अथवा एक दूसरे की नकलें लगाकर लोगों का मनोरंजन करते थे| बाद में यह परम्परा जातिगत अति-जागृति के कारण कलह-क्लेश का कारण बनी और पंचायत-मुकदमों की नौबत के कारण समाप्त प्राय: हो गई| कांगड़ा जिला के भगतियों के डेरों में प्रमुख रुप से धनोटू का 'दुआनुए दा डेरा', क्यारी का 'सालिए दा डेरा', डोहब का 'धर्म चन्दे दा डेरा', आलमपुर का 'मस्तो दा डेरा' आदि काफी ख्याति प्राप्त डेरेदार हुए है| इनमें से कुछ तो भगत के लिए इतने विख्यात हुए कि लोग उनका नाम सुनते ही उनके नाच गाने व विभिन्न लीलाओं को देखने के लिए दौड़े चले आते थे | भगत के ऐसे कलाकार हुए हैं जो नृत्य-संगीत-कला के साथ-साथ विभिन्न लीलाएं करने में भी सिद्धहस्त रहे हैं|

रात पड़ते ही भगत-नाट्य आरम्भ होता है| लोग रात का भोजन खाकर और अन्य कार्यों से निवृत होकर आंगन में 'घियाने' के पास एकत्र होते हैं| काम आरम्भ होने से पूर्व भगत-मण्डली का मुखिया अर्थात् 'गुरुजी' या 'उस्तादजी' गृह-स्वामी को बुलाकर अग्नि-देवता का पूजन कराता है| लोगों में गुड़ का प्रसाद बांटा जाता है | तब भगत का विधिवत् कार्यक्रम आरम्भ होता है | सबसे पहले भगवान की आरती उतारी जाती है | घरवालों की सुख-समृद्धि के लिए कामना की जाती है | आरती के बाद भगत की सफलता के लिए मंगलाचरण होता है- जिसे हर मण्डली अपने-अपने ढंग से सम्पन्न करती है | प्राय: आरम्भ में यों गाया जाता है-

"ओम् पहलां गणपति पूजिए, पीछे कीजिए काज |
गणपत गणेश मानिए, वही रखे म्हारी लाज |"

इसी तरह कभी-कभी शक्ति देवी की स्तुति भी गाई जाती है-

"पहले गणपति पूजिए, फिरी देवी शक्ति करतार |
दया दृष्टि राखियो, नौका लाए पार |"

कांगड़ा जिले म भगत के लोकमंच की प्रसिद्धि 'रांझू-भगतिए' की कहानी से जुड़ी है | रांझू एवं कांझू दो भाई भगत के कलाकार थे और भगत के डेरे के 'भारी' (बोझा उठाने वाले) भी थे | कहा जाता है कि रांझू ने सिद्धाथा क्षेत्र म क्यालबड़ के पास एक भगत की साई ली थी, सभी भगतिए रांझू के साथ जब शाम को चले तो अणोही के जंगल म रास्ता भटक गए और रात हो गई | अब उन्ह लगने लगा कि सिद्धाथा पहुंच पाना असंभव है| रांझू को कुछ दिव्य दृष्टि ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने सारा सामान रख कर वहीं लकड़ियां इकट्ठी कर 'घियाना' लगाया और भगत करनी प्रारम्भ कर दी| सभी कलाकारों ने पूरे भक्ति भाव से भगत सम्पूण की और जब सुबह आरती की तो सक्षात् शिव-पावती की कृपा से 'डौरु', 'एक टका सोने का' और 'गणेश की मुर्ति वाला घण्टा' आकाश से गिर कर 'घियाने' के पास गिरी | रांझू ने इसे शिव-पावती महिमा का प्रसाद माना और उसे लेकर सुबह रास्ता पूछते हुए क्यालबड़ के पास पहुंचे तो देखा कि लोग उस साई वाले घर से आ रहे थे और यही कह रहे थे कि आज रांझू की भगत को देखकर तो आनन्द ही गया | घर के लोगों से बात की तो उन्होंने सभी की वाह- वाही की और यह बताया कि हमारी तो मनोकामना पूरी हो गई और आपकी भगत से भी बड़ा मज़ा आया| सभी भगतिए हैरान थे कि यह कैसी लीला हुई है- जिसम हम शिव-पावती द्वारा यह आशिवाद मिला है| आज वही शिव का 'डौरु' 'लपियाणा' के पास 'चलाइयां' म बाबा धिन्नू-मसन्द के डेरे पर

सुरक्षित है और सभी भर्गातिए वहां पर जाकर कड़ाह-प्रसाद चढ़ाकर आशिवाद लेते ह| वतमान म गिरधारा लाल उस “डौरु” का पूजा करता है | यह भी कहा जाता है कि ‘सोने के टके’ को राजा का तालाब के भर्गातिए और गणेश का मूर्ता वाला घण्टा को ‘ध्याला’ के डेरेदार ले गए, परन्तु वह उन्हे संभाल कर नहा रख पाए और बेचकर खा गए|

जिला कांगड़ा म कुछ स्थान ऐसे ह जहां वष के एक निर्धारित दिन पर भगत का आयोजन किया जाता है जिसम जसूर-गनोह के पास ‘घारे दे तलाए’ पर भगत का जाती है| इसका सम्बंध उस क्षेत्र म फैला महामारा को रोकने के लिए लच्छूराम हरिजन के द्वारा मनौती करने के उपलक्ष्य म आयोजित किया जाता है| इसी के साथ-साथ पंच-भीष्मा म भी विभिन्न स्थाना पर पांच-पांडवो को लगाकर पुतले सजाकर भगत करने-करवाने का परम्परा है, जिसम गोलवां-राजा का तालाब, रिन्ना-भडवार, ज्वाला डागला एवं नगरोटा सूरियां के पास जड़ोह आदि स्थान प्रसिद्ध है | पांडवा को यह लोग ज़िन्दा देवता और छिपने-वाले देवता मानते ह | पंच भीष्मा का पूणिमा को एक चारपाई पर पांडवा का पालका सजाई जाती है| इससे पूव जब अमावस्या के बाद चाँद बनना शुरु होता है तब से पांडव-लगवाने वाले ब्राहम्ण समुदाय के लोगा के द्वारा दस-ग्यारह दिन तक ‘रौह’ गाई जाती है और पंच-भीष्मा व पूणिमा का रात को भर्गातया के द्वारा ‘बार’ गाई जाती ह| इन ‘बारों’ म पांडवो व कुन्ती का वणन होता है|

घास-पुआल के बुत पर मुखौटे पहनाकर बनाए गए पांडवा को पालका पर सवार होकर झांका निकाला जाती है और कहार भी पांडवो के भेष म हा होते ह| किसी विशेष ‘सुक्खणा’ (मनौती) पर पांडवा को लगाने

का परम्परा रहा है और विशेष रुप से बांझ स्त्रियां को पुत्र प्राप्ति के लिए सजी हुई पालका के निचे से गुजरने का परम्परा है। इसके अतिरिक्त जादू-टोने अथवा अपशकुनां से भी इस पालका के निचे से गुजरने पर मुक्ति मिलती है। भगत के आयोजन के मध्य पांडव लगाने व उन्ह नचाने का जिम्मा जिस भगतिए का होता है, वह अवश्य 'जाणी-जांण' अथात जन्त्र-तन्त्र-मन्त्र विद्वा म निपुण होना चाहिए। यह भी माना जाता है कि जब पांडव नचाये जाते है तो उन पर पूरा रुप आ जाता है और वह दैवीय रुप के साथ-साथ कई करतब करते हुए उड़ तक सकते ह। यदि उन्हे संभालने वाला भगतिया 'जाणी-जांण' न हो तो पांडवो को संभालना कठिन तो क्या असंभव हो जाता है।

'भगत' के कलाकारां के लिए किसी सजे-सजाए अथवा बने बनाए मंच का आवश्यकता नहां होती है। किसी भी धर का प्रांगण, खुला चौपाल, खेत-खलिहान अथवा किसी चबूतरे पर भगत का स्टेज बना ला जाती है। एक- दो चारपाई खड़ी करके नेपथ्य बना लिया जाता है। जहां भगत के कलाकार सुआंगां अथवा विभिन्न लालाओं के लिए बनाव-श्रृंगार कर लेते ह। रौशनी और ठण्ड से बचने के लिए बीच म 'घियाना' लगा दिया जाता है। वेशभूषा के लिए कुछ कपड़े रोज़मरा के पहनावे से तो कुछ विशेष पोशाक किसी ड्रामा क्लब आदि से उधार ले लिए जाते ह। औरत या सखी का भूमिका के लिए वेशभूषा उस घर से हा जुटा ला जाती है, जहां भगत का आयोजन हो रहा होता है। बनाव-श्रृंगार का वस्तुएं आदि भी इधर-उधर से जुटा लिए जाते ह और यदि न भी मिले तो पाउडर का जगह 'आटा' और काजल का जगह 'कोयले का राख' से हा काम चला लिया जाता है।

प्रस्तुति:-

भगत की शुरुआत भगतियों के आने तथा उनका आदर- सत्कार व घियाना लगाने से होती है | बाद में यजमान से आटा मंगवा कर पूजा-पाठ किया जाता है और तबले पर थाप देकर, जिसे 'छेड़' करनी कहा जाता है, सर्वप्रथम अग्नि की पूजा की जाती है| भगतियों को खाना खिलाने से पहले नौ पत्तलों में 'जग' (धाम) का खाना और दसवें पत्तल में कच्चा 'कोरा' (अन्न) रखवाया जाता है, जिसे- 'दसूंह' कहा जाता है | धूप-दीप से पूजा करके कच्चा कोरा व 'अरदास' उठाई जाती है फिर खाना खिलाया जाता है| अरदास उठाने का अधिकार सिर्फ हरिजन भगतिए को ही होता है, विशेष रुप से पांडव लगाने की सुक्खणा तो केवल यही उठा सकता है और कोई नहीं| इसके पिछे भी पांडवों का आशिर्वाद माना जाता है क्योंकि किसी रसोईए ने पांडवों के खाने में ज़हर मिला दिया था, परन्तु इसकी सूचना हरिजन ने पांडवों को दे दी थी और सभी बच गए थे| इसी कारण पांडवों ने उन्हें आशिर्वाद दिया था कि भविष्य में हमारी सुक्खणा को केवल तुम्ही उठाओगे|

अरदास एवं सुक्खणा उठाने तथा खाना खाने के बाद शुरु होता है- पूर्व रंग, जिसमें 'डौरु' के साथ-साथ अन्य ताल-वाद्य बजाए जाते हैं और इस अन्तराल के मध्य भगतिए अपनी-अपनी वेशभूषा व बनाव-श्रृंगार में जुट जाते हैं| इसी बीच फरमाइश के गाने होते हैं, मुजरा-बेल होती है और मनसुखा-सखी का नृत्य होता है| इसके उपरान्त होती है-राग 'कोहदड़ा' में गणपति गणेश वन्दना| गणेश की स्तुति के बाद होती है- कृष्ण लीला, जिसमें एक भगतिया श्रीकृष्ण तो बाकी सखियों के रुप में बन संवर कर रास लीला रचाते हैं| मनसुखा बनता है- कृष्ण

का सखा और सभी मिलकर कृष्ण लीला म विभिन्न लीलाएं, माखन लीला, छल्ला-मुन्दरी लीला आदि खेली जाती ह| बीच-बीच म मनसुखा श्रीकृष्ण के प्रश्नों के उटपटांग उत्तर देकर सभी को आन्नद के रस म विभोर कर देता है|

मनसुखा की भूमिका भगत म सबसे अहम होती है| वह जहां मुख्य सखी या नतकी को विभिन्न सम्बोधनों से सम्बोधित करता हुआ प्रेमालाप करने का प्रयास करता है, वहां वह केवल श्रीकृष्ण के प्रति ही विनीत भाव रखता है, बाकी सभी भगतिए विभिन्न पात्रों अथवा दशकों तक को अपने फटे बांस के डंडे से पीट भी देता है| जब भी कोई उसकी बात नहीं मानता है तो डण्डे को फटकारता हुआ कहता है-

> "दिक्खया है बयांग,
> जे फुसग्गा ना-----तां-----
> जब्बरे जो हक्क पाणा पौणी|"

इसी प्रकार अपना परिचय देता हुआ कहता है-

> "पैर मेरे छोटे-छोटे, पेट जब्बर-जंग|
> अट्ठ सेर लड्डू खांदा, होर पीन्दा भंग|"

भगत का मनसुखा जहां बन्दरों की तरह उछलकूद करता हुआ नकलचियों अथवा सुआंगियों के साथ-साथ किसी दशक की गोदी म या कन्धों तक बैठ जाता है, वहां वह अपनी प्रिय सखी को विभिन्न सम्बोधनों से इस प्रकार पुकारता है कि सभी लोग हैरान-परेशान हो जाते ह| वह उसे- हाय वो| मेरिए पिलपिलिए, लसपसिए, मेरीए

रसभरिए आदि नामों पुकारने के अतिरिक्त नृत्य करते समय गाने के बोल के अन्त म- 'छलको हे'....... को लम्बी तान से एक अलग हो समां बान्ध देता है | इसी बीच जहां-जहां भी समय मिलता है मनसुखा या डेरेदार का मुखिया सूत्रधार के रुप म सभी पात्रों का परिचय भी देता चलता है|

भगत म सुआंगो को काव्यमयी भाषा के बीच म मनसुखा और श्रीकृष्ण को दोस्ती और कुशलक्षेम के संवाद हास्यरस को उत्पाित करते ह| अबोध बना मनसुखा श्रीकृष्ण के कथनों का उल्टा हो अथ लगाकर उटपटांग उतर देता है, जिसमे भगत को साथकता स्पष्ट रुप से झलकती है | मंच पर बड़ी बेचैनी म अपने सखा- मनसुखा को ढूंढ़ते हुए कृष्ण कहते ह-

श्री कृष्ण- ऐ....... जी| मनसुखा.......
मनसुखा- (पीछा से) मेरा मन कुन्हो पुच्छया ?
श्रीकृष्ण- (आदरभाव से) मनसुखा लाल जी....
मनसुखा- मेरा होया बुरा हाल जी........
श्रीकृष्ण- म मोटर भेजां......
मनसुखा- जी, म हुण नी पीन्दा| म छड्डी दितियो|
श्री कृष्ण- क्या....... नी...... पीन्दा......
मनसुखा- जी, बोतल|
श्रीकृष्ण- म लौरो भेजां|
मनसुखा- ना, जी ना, हुण मत भेजदे|
श्रीकृष्ण- मनसुखया, कैह ?
मनसुखा- जी, हुण म जब्बरा (बुड्ढा) होई गिया|
श्रीकृष्ण- कया ?.......

मनसुखा- जी लाड़ी.......

इस प्रकार के संवादों से और अथ लगाने के कारण सभी दशक भरपूर आन्नद उठाते ह| भोले-भाले स्वरुप म मनसुखा बातों हो बातों म कहता है-

“कल्याण हो को कुनैन दो, आशिवाद को खीरा दा बांट”
पंज-संत सखियां जमना किनारे को पंज-सत सट्टियां (जूतियों का)
जब्बरा (जसूर-नुरपुर के पास का खड्ड) के किनारे,
जमना घाट पर पैहरा दिंगा को जमना (स्त्री विशेष का नाम)
दे घराट म नी दिन्दा पैहरा, रोटी- पाणी फ्री को रोटियां पर घी,”
आदि-आदि कहकर स्वंय भी ज़ोर से हंसता है और सुनने वालों के पेट म भी हंसते-हंसते बल पड़ जाते ह|

एक लड़के को कृष्ण बनाकर आसन पर बिठाया जाता है| उसने कुता, धोती, पटका, मुकुट पहना होता है | उसके हाथ म मुरली होती है| तीन-चार पात्र सखियों की वेशभूषा म प्रवेश करते ह| इन्हो म एक चन्द्रौली होती है| ये घाघरा, कमीज़, चुड़ियां, घुंघरु, दुपट्टा, बेसर आदि पहने होती है| ये सभी श्रीकृष्ण के चरणों म नतमस्तक प्रणाम करके भजन गाते ह और नृत्य करते ह| कुछ देर नृत्य-गायन होने के बाद मनसुखा आता है | यह विदुषक का काम भी करता है| इसे ‘डंडू’ या ‘डंडा-कान्हा’ भी कहते ह| इसके हाथ म डंडा होता है जो प्राय: बांस का होता है जिसे एक सिरे से चीर दिया होता है ताकि जब कभी वह इसे धरती पर बजाए तो छणक-छणक की ध्वनि आकषक हो जाए, और जब कभी वह इससे दूसरो को मारे तो ज़ोर से न लगे| यह पात्र प्राय: चतुर, अनुभवी, हसंमुख होता है| उन्मुक्त हास्य प्रदान करना

इसका उदेश्य होता है| श्वेत रंग का लम्बी दाढ़ा के साथ इसने उलटे-सीधे नाना रंगां के फटे-पुराने कपड़े पहने होते ह| सिर पर पगड़ी बांधी होती है| श्रीकृष्ण से मिलने से पूव इसे दूसरे पात्र रास्ते म हा रोक लेते ह| वे मनसुखा को वापिस जाने का राय देते ह| परन्तु उसने भगवान से मिलने का पूरा इरादा किया होता है| हर प्रकार के कष्ट सहन करके भी वह श्रीकृष्ण के दशन किए बिना जाने को तैयार नहां होता-

“अरे तुम कौन हो ?
मनसुखा
क्या करने आए हो?
मन-सुखाने (दुख देने) के लिए|
तो चूल्हे पर क्यां नहां सुखाते ?
अरे नहां, मन का शान्ति के लिए|
यह कहां मिलेगी?
भगवान कृष्ण के पास|
कहां से आए हो?
आए हन आए हन, बड़ी दूर ते आए हन
कृष्णजी दे दशन दा, असीं इरादा बनाए हन”

इस प्रकार नाना प्रकार का दलाल देकर अन्त म प्रवेश पा हा लेता है| श्रीकृष्ण के पास पहुंचकर वह साष्टांग प्रणाम करता है और गदगद हो उठता है|

इसके बाद श्रीकृष्ण लीला से सम्बंधित अनेक अन्य दृश्य प्रस्तुत होते है| मनसुखा तथा गोपियां श्रीकृष्ण को लालजी कहकर सम्बोधित करती है| श्रीकृष्ण मनसुखा से कहता है-

“तू बरसाने मे जा, वहां ललिता और चन्द्रावली नाम की सखियां है| उनसे कहना आज तुम्हारे बरसाने मे श्रीकृष्ण गौए चराने आए है| उन्हे बड़े ज़ोर की भूख लगी है| उनके लिए माखन मिश्री दो|”

मनसुखा इस नौकरी को टालने का प्रयास करता है| नामों को बिगाड़ कर ललिता को ‘लड़ती’ तथा चन्द्रावली को ‘चन्दरी’ (कंजूस) बताता है और कहता है-

“ना, ना, ना | इनके तो नाम ही बुरे है| मुझे कहां देगी...... (थोड़ा रुककर) माखनलाल जी तुम ही जाओ ना मांगने| तुम तो सुन्दर हो, बांसुरी बजा कर सुनाना| वे तुम्हे मटका भर कर माखन देगी | मेरी तो शक्ल देख कर उन्हे उलटी आ जाएगी|”

ये सुनकर लोग हंसते है| श्रीकृष्ण मनसुखा से कहते है-

“सखा मनसुखा मुझे शर्म आती है (थोड़ा रुककर) मांगते समय |”

और मनसुखा तपाक से अपनी लाठी को ज़मीन पर बजाता है और कहता है-

“तो क्या तुमने मुझी को बेशर्म समझ रखा है| मै भी तो मर्द हूं तुम्हारी तरह, क्या शर्म करना मुझे नहीं आती |”

मनसुखा गोपियां से मिलता है तो गोपियां श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आतुर होकर कहती ह-

"माखन तुम्ह नहीं, तुम्हारे लालजी को ही मिल सकता है। मगर एक शत पर, नाचना और गाना पड़ेगा।"

मनसुखा गोपियां को अतिशयोक्ति की भाषा बताता है कि लालजी नाचने तथा गाने म माहिर है। संदेशवाहक मनसुखा श्रीकृष्ण को सब कहानी सुनाता है। श्री कृष्ण मनसुखा से कहते ह-

"देख हम मद ह, ये औरत ह। भूखे हम ह। मगर हमारी भूख मिटाने आएंगी भागी-भागी ये।"

श्रीकृष्ण बांसुरी बजाते ह, गोपियां सिर पर मटका रख कर वहां आ जाती है। गोपियां की मांग पर श्रीकृष्ण गीत गाते ह-

"ए री सखी थोड़ा- माखन दी दो,
कहां मोरी गौएं, कहां मोरे बछड़े, ज़रा बताई दी जो।"

इस गीत के पूरा होते ही गोपियां मनसुखा को वन म पत्ते लाने के बहाने टाल कर भेज देती ह फिर श्रीकृष्ण से संयोग-लीला करती हुई गाती और नाचती ह । जब तक मनसुखा लौटता है, गोपियां अपना प्रयोजन सिद्ध करके भाग जाती ह। मनसुखा के आते ही श्रीकृष्ण मनसुखा से कहते ह-

"ये गोपियां बड़ी चालाक ह। हमसे छल करती ह, हम भी छल करगे।"

फिर दोनों स्त्री वेश म गोपियों से मिलने का प्रयास करते ह| श्रीकृष्ण चन्द्रावली को अपनी सगी बहन बताते ह| चन्द्रावली के स्पष्टीकरण मांगने पर श्रीकृष्ण बताते है कि बचपन से ही अपने मामा के घर रहती थी| लेकिन बातों ही बातों म चन्द्रवली पहचान जाती है कि यह स्त्री वेश म कोई मद यानी श्रीकृष्ण है| इसलिए गीत की कड़ी से जाहिर करती है-

"सखी तेरी चाल मर्दों की, सखी तेरी छाती मर्दों की"

कृष्ण-लीला से सम्बंधित भगत के इन दृश्यों म हिन्दी साहित्य के भक्ति-कालीन साहित्य का प्रभाव प्रदर्शित होता है| श्रीकृष्ण के चरित्र ने इस क्षेत्र के जन-जीवन को निश्चित रुप से बहुत प्रभावित किया है| इस प्रभाव को कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों म परिलक्षित किया है| जिस प्रकार कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने चित्रों म श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बंधित घटनाओं को ख़ूब उभारा है, उसी प्रकार इस क्षेत्र के लोक- नाट्य भगत म कृष्ण की लीलाओं को अनेक तरह से प्रदशन मिला है|

साधारणत: भगत से अभिप्राय कृष्ण-भक्ति से सम्बंधित साहित्य का लोक-नाट्य रुप म प्रदशन से है| परन्तु भगत म केवल श्रीकृष्ण के चरित्र का ही चित्रण मात्र नहीं रहता है, बल्कि भगत-मण्डली अन्य बिषयों की ओर मुड़ जाती है जैसै- सत्यवान- सावित्री, प्रहलाद भगत, राजा हरिशचन्द्र, पूण भगत, वीर अमरसिंह राठौर आदि साहित्यिक नाटकों का प्रदशन होता है| ऐसे लम्बे नाटक लोगों म अधिक प्रिय होते है, इसकी घोषणा कलाकार गाकर ही करते ह जैसे-

"सब छोटे बड़े अरज़ सुनो मेरी गौर|

अज राती लीला खेलनी अमर सिंह रोठौर||"

ये कुछ-कुछ नौटकी जैसा होता है| इन नाटकों की कथावस्तु धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक कुछ भी हो सकती है| इसकी भाषा, कथावस्तु, शैली, अभिव्यक्ति म पहाड़ी जन-जीवन का रंग चढ़ा होता है| परन्तु इसम से किसी का भी लिखित रुप नहीं होता, और न ही इसका पूण जीवन ही प्रदशित होता है | जहां कहीं कोई प्रसंग भूल जाएं तो भगतिए तुरन्त अपनी ओर से बात बना कर प्रसंग जोड़ लेते ह और कथा का प्रवाह टूटने नहीं देते| जो अंश लोक-मानस म अधिक प्रभावशावी होता है उसी का अभिनय किया जाता है | इसलिए सभी भगत मण्डलियों के नाटकों का रुप एक जैसा नहीं होता| बीच-बीच म लोक-गीतों और नृत्यों की झलकियां प्रस्तुति को और रोचक बना देती ह| दशकों म से किसी गाने या नृत्य की फ़रमाइश की जाती है जो मण्डली के कलाकार पूरी करते ह| प्राय: एक दृश्य से दूसरे दृश्य अथवा एक नाटक से दूसरे नाटक के बीच म लोक-गीतों और लोक-नृत्यों का कायक्रम जारी रहता है| गद्दी-गद्दन का स्वांग अक्सर हर मण्डली द्वारा प्रस्तुत किया जाता है| इसम लोक-गीतों की भरमार होती है| इन स्थानिय कथानकों म मनसुखा का काम "रौलू" करना है| "रौला डालना" अथात् हंसी-मज़ाक या मखौल करना इसका मुख्य काम होता है|

प्राय: आधी रात तक कृष्ण लीला से सम्बन्धित प्रदशन होते ह और बाद म अन्य साहित्यिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक नाटकों या स्थानिय कथाओं पर अधारित नाटक प्रस्तुत किए जाते ह| इन नाटकों पर ही भगतिए की कला-उत्कृष्टता, दशकों का मनोरंजन और भगत की साथकता निभर करती है| कोई समय था जब नकलची कलाकारों के

द्वारा समाज म पाई जाने वाला सभी जातियां का नकल बखूबी लगाई जाती थी| लोगां के गुण-अवगुण व समाज का बुराईयां को इन नकलां के माध्यम से उठाया एवं उघाड़ा जाता था| इन देसी नकलां के साथ-साथ परदेस का नकल भी कलाकार उनका भाषा के साथ लगाते थे| इनम जम्मू क्षेत्र के 'लधेया' सुआंग, जो कि तीन-चार रंग का बिशेष पगड़ी पहनते थे और 'पखतून' व 'बलोच' का खानां के सुआंग भी लगाए जाते थे और कलाकार पश्तो व बलूच भाषा का प्रयोग कलात्मक अन्दाज म प्रस्तुत करते थे| इन्हां के साथ-साथ कुछ आध्यात्मिक सुआंग भी लगाए जाते ह, जिसम नारद का सुआंग और शिव का सुआंग काफा प्रसिद्ध ह| इसके अतिरिक्त "भंड-सुआंग" भी लगाए जाते ह, जिसम भद्दी गालियां, अश्लीलता एंव कामुक-संवादां का भरपूर समावेश रहता है| इन संवादां से दर्शक जहां दंग रह जाता है, वहां इसका भरपूर आन्नद भी उठाता है| केवल स्त्री-वग हा ऐसे सुआंगां को देखने से वंचित रहता है| ये सुआंग रात्रि के अन्तिम प्रहर तक अभिनीत होते ह| सुबह होते-होते भगत के अन्तिम दृश्य प्रस्तुत होते है| अनेक मण्डलायां इन अन्तिम दृश्यां को अत्यन्त मनोरंजक बनाती है ताकि दशक उत्तम प्रभाव लेकर वापिस जाएं| सुआंगां अथवा ड्रामां के मध्य फ़रमाइशां का दौर भी चलता है और लोग "बेल" करते हुए मनोकामनएं भी करते रहते ह| डेरे का मुखिया अथवा सूत्रधार कलाकार 'बेल' करवाने वाले को इस प्रकार आशीष देते ह-

"बेल-बेल इक रुपइए दा बेल,
मां दे बच्चेयां दा बेल.......
माता इन्हां दे धने च बाहधा पावै.,
इक-इक रुपइए नूं लक्ख- लक्ख बणावै"......

भगत के समापन् पर आरती, अरदास के साथ-साथ ‘भगतमाल’ गाने की परम्परा भी है| ‘भगतमाल’ को ‘दशावतार’ भी कहा जाता है और ये भी माना जाता है कि यदि यह गाई न जाए तो भगत की मनोकामना पूरी नहीं होती है| लम्बी भगतमाल लगभग साठ पंक्तियों की है, जिसम प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार ह-

“हरि ओम हरिहर,
राग पोथी भगतां वाली,
भगत बच्छल संतन के सुखदाई,
जहान के दुख नुआरो मेरे भाई,
हरि ओम हरिहर.”.........

इसम स्थानिय देवी-देवताओं की आरती भी उतारी जाती है| सरस्वती वंदना अत्यन्त आकषक और प्रभावशाली होती है जिसम सरस्वती की झांकी भी प्रस्तुत होती है| एक पात्र को सरस्वती के रुप म सजाया जाता है| माता को मोर की सवारी म दिखाया जाता है| सभी भगतिए आरती गाते ह-

“कौण देव ने पैदा कीती, कौण देव ने मन्नी जी |
तू है मेरी देवा, आद-भवानी जी............||
कौण देव तेरी करे रसोइया, कौण भरे जल-पाणी जी |
तू है मेरी देवा, आद-भवानी जी||
आदि शक्ति ने पैदा कीती, तीन लोक ने मन्नी जी |
ब्रहमा,बिष्णु करे रसोइया, इन्द्र भरे जल-पाणी जी||
तू है मेरी देवा, आद-भवानी जी|
अवतारे जगतारे मेरी माता, अवतारे जगतारे जी||”

यह आरती धूप और ज्योती के साथ उतारी जाती है| और अन्त म हलवा बनाकर चारों दिशाओं को अपित किया जाता है तथा सभी दशको म बांटा जाता ह| प्रचीन समय म भगत उपदेश और प्रचार का अनुठा साधन रहा है| पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटिकाओं म पात्रों के द्वारा साकेतिक और प्रतीकात्मक रुप म अभिनय द्वारा चरित्र-निमाण म भगत ने सराहनीय काय किया है |

कांगड़ा जिला का यह लोक-नाट्य भगत जहां “शिव-पावती” की महिमा का वरदान माना जाता है, वहीं इसे सतयुग के “कान्हा-अवतार” एवं उसके परम भगत “ऊधौ” से भी जोड़ा जाता है| कोई समय था जब ग्रामीण जन- मानस और श्रमिक वग इससे भरपूर आन्नद प्राप्त करते थे और रजवाड़े-सामन्त तक इसे छुप-छुप कर, इसे देखने के लिए आते थे| भगतिए भी केवल सवा- रुपये की साई पर ही भगत करने के लिए पहुंच जाते थे|

भगतिए कलाकारों की वाकपटुता एवं अभिनय क्षमता आज भी बड़े-बड़े शिक्षित व मंझे हुए कलाकारों से किसी भी रुप म कमतर नहीं कही जा सकती है|

हिमाचली लोक नाट्य- बांठड़ा

भारतीय लोकमानस म अभिव्यक्ति का सहज तरीका लोक रहा है। जो अपने आप म स्पंदन की विविधता समेटे हुए है, वहीं पर इसका अपना अलग ही सौंदय शास्त्र रहा है। लोकनाट्य को पांचवां वेद माना गया है। कला चिंतक और सौंदयशास्त्री आचाय "भरत मुनि" ने समाज के दबे-कुचले दलित वग के लिए नाट्यशास्त्र की रचना कर, इसे लोक की थाती के रुप म स्थापित किया। समाज के थके, हारे, पिछड़े, उपेक्षित, निराश और जीवन के बोझ से दबे तथा आक्रांत लोगों का संबल भी कालांतर म लोकनाट्य ही बना। हिमाचली लोक नाट्य "बांठड़ा" भी इसी आधार भूमि पर विकसित हुआ है "बांठड़ा" मूलत: मण्डी और बिलासपुर जनपदीय लोकनाट्य है, परन्तु मण्डी और बिलासपुर जिलों से जुड़े शिमला और कुल्लू क्षेत्रों म भी यह लोकनाट्य प्रचलित है। "बांठड़ा" लोकनाट्य म प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों म परम्परा से प्रचलित लोकनाट्यों जैसे- करियाला, भगत आदि की शैली और कथानकों का इतना अधिक सादृश्य देखकर बहुधा ऐसा लगता है जैसे ये सभी नाटक एक ही हों। सांस्कृतिक देना-पावना की प्रकिया म विभिन्न लोकनाट्य परस्पर प्रभावित होते ह और उनम

सादृश्य झलकने लगता है। “बांठड़ा” लोकनाट्य हास्य-व्यंग्य प्रधान नाट्य के रुप म स्थानीय लोगों ने पीढ़ी-दर- पीढ़ी विकसित किया है और समय के साथ इसम अभिव्यक्ति के नये विषय भी जुड़ते जाते है। लेकिन हास्य के साथ वयंग्य इस लोक नाट्य म हमेशा बना रहता है, यही इसके प्रभाव का आधार है। शिवरात्री मण्डी जनपद का सांस्कृतिक पव है। एक सप्ताह तक मनाये जाने वाले शिवरात्री पव पर लोक मनोरंजन के विभिन्न आयोजनों म “बांठड़ा” लोकनाट्य का प्रदशन सर्वाधिक लोकप्रिय है। मण्डी और बिलासपुर के ग्रामिण क्षेत्रों म “बांठड़े” के खेल प्राय: दशहरे से आरंभ होकर नवम्बर माह तक चलते थे।

उद्गम एवम् विकास

“बांठड़े” का रुपाकार अनेक अन्य पहाड़ी लोक-नाट्यो से अधिक विस्तृत, प्राचीन और प्रसिद्ध रहा है। “बांठड़ा” लोक-नाट्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है एक अनुमान के आधार पर इसकी प्रचीनता के सूत्र गुप्तकाल से पूव की लोकधर्मी-नाट्य परम्परा से संबद्ध प्रतीत होते है। “जगदीशचन्द्र माथुर” का मत है कि गुप्तकाल से पूर्व लोकधर्मी नाटकों तथा अभिजात्य नाटकों म भेद था ही नहीं। यह मनोरंजन का साधन तो है, साथ ही अपनी यौवनावस्था म इसका आयोजन राजमहलों तक प्रवेश पा चुका था। रानियों के निवास स्थान पर, जहां किसी को जाने की आज्ञा नहीं थी, “बांठड़ा” मण्डलीयां सम्मान पाकर अपना लोक नाट्य प्रदर्शित करती थीं। कमलाह जैसे बड़े-बड़े देव- मंदिरों म भी “बांठड़ा” देवताओं की मनौती म आयोजित होता था

। परम्परा म प्रचलित “बांठड़ा गीत” की कुछ पंक्तियां भी उक्त तथ्य की पुष्टि करती है-

मालो रेया मामटेया तू बेहड़े सदाया।
बेहड़े सदाई के क्या काम फरमाया।
बांठड़े पाणे मेरे मामा, कान्ह-चन्दरौलो नचाणी।
पहला ओ बांठड़ा राजे रे महला।
दुजा जे बांठड़ा राणी रे अन्दरौला।
त्रिजा बांठड़ा कमलाह दुगा माता।
चौथा बांठड़ा परजी जो सुणाणा ।

इसी नृत्य-गीत के अगले बोल “बांठड़े” के समय का संकेत करते ह यह तब मनाया जाता है जब घर-घर के आंगन म धनिया, मेथी और वनों म सुन्दर काई फूल खिलते ह काई के फूल खिलते ही वषा ऋतु का अन्त होता है और शरद ऋतु का आरम्भ होता है -

घर फूलो रे बीहण-मीरथे, बणा फूलीरे सुनहणे काही।
काहीरे बुम्बण लटके, सिया रो रोत आई।
रोत सह फिर घिर-घिर आई, मनुख सह नी आया।
गढ़ मारुए मिंढ-बकरे बढ़ेया धाम रचाई।
केस जो हुंदे मिंढे-बकरे केस जो हुंदो धामा।
परजा जो हुंदे मिंढे बकरे, राजेया जो हुंदो धामा।

“बांठड़ा” लोकनाट्य के नाम तथा जन्म से सम्बंधित एक अनुश्रुति लोक म प्रचलित है । ऐसा कहा जाता है कि राजा “वीरसेन” के शाशन काल म सुकेत राज्य म निरक्षरता का बोलबाला था। इससे राजा बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपनी प्रजा को अल्प समय म शिक्षित करने का आदेश जारी किया। तब राजा के दरबारी गायक “नगेन्द्र” ने संगीत-गायक के माध्यम से अल्पकाल म जनता को

शिक्षित करने का बीड़ा उठाया। राजा "वीरसेन" का हुक्मनामा "बांथरा" था अथात् संगीत-गायक द्वारा नैतिक शिक्षा देना। "बांथरा" नामक नई शिक्षा विधि के लिए एक थड़े अथवा मंच का स्थापना हुई जहां से लोगों को संगीत-गायन का मधुरवाणी म नैतिक शिक्षा प्रदान का जाती थी। शिक्षा पदध्ति (बांठड़ा) और उसके प्रचार-प्रसार स्थल (थड़ा) को जोड़कर लोगों न "बांठड़ा" शब्द गढ़ लिया।

कुछ विद्वानों ने "बांठड़ा" का सम्बध स्थानिय शब्द "बांठण" से जोड़ा है। "बांठण" का अथ सुन्दर या सुन्दर युवती है। इसका पुल्लिंग रुप ठिण्ड है-

ठिण्डो रा टोपीए तोड़के-शी लाए।
बांठणी रे नौयणे माउए शीखाए।

अथात् (सुन्दर) युवक का टोपी (के सौन्दय) ने (हृदय पर) तड़का- सा लगा दिया है, और उधर सुन्दर युवती के नयनों ने मधु-मक्खी का तरह डंक मार दिया। "बांठण" से "बांठड़ा" शब्द व्यंग्याथ म बन-ठन कर रहने वाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। परन्तु वास्तव म "बांठड़ा" शब्द का सम्बन्ध "भाण्ड" से जुड़ता है। "भाण्ड" शब्द स्वयं संस्कृत शब्द "भाण" से व्युत्पन्न हुआ है। संस्कृत साहित्य के अनुसार "भाण" दृश्य-काव्य का एक रूपक है जिसम हास्य का प्रधानता रहती है और यह प्राय: एक अंक का होता है। इस दृष्टि से भाण, सट्टक और प्रहसन को लोक शैला के नाट्य रूपक कहा जा सकता है। आधुनिक समय म भाण्डों, भडैतों, नटों और भगतियों न लोक-शैला के छोटे-छोटे प्रहसनों को जीवित रखा है। भाण्ड से भाण्डड़ा बनना लोकभाषा का स्वाभाविक गुण है। इसका अन्यत्र उल्लेख हो चुका है। भाण्डड़ा से "बांठड़ा" बनना भी पहाड़ी भाषा का शब्द-व्युत्पत्ति के अनुसार नीतिपरक है।

“बांठड़ा” शब्द बन-ठन कर रहने वालों के लिए भी प्रयुक्त होता है। “बांठड़ा” के कलाकारों ने अपने बनाव-श्रृंगार म स्थानिय उपलब्ध प्रसाधनों का उपयोग किया है। कलाकारों की वेशभूषा स्वांग के पात्रों के अनुरूप होते हुए भी खास तौर से दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करने वाली होती है और हास्य-वयंग्य को अधिक असरदार बनाने म सहायक होती है।

ग्रामीण समाज म सामूहिक कार्यों का बंटवारा जाति के आधार पर किया जाता था। विवाह-शादियों और देवी-देवताओं के बड़े कारजों के लिए आज भी पारम्परिक व्यवस्था के अनुरूप कार्यों को बांटा जाता है। सामूहिक भोज के दौरान बैठने वाली पंक्ति को पठ कहा जाता है। इस दौरान बोटियों यानी रसोईयों के काय को पूरा सहयोग करने वालों को बांठ कहा जाता है। बोटी व बांठ का यह समन्वय न केवल ग्रामीण समाज तक ही सीमित था, अपितु यह व्यवस्था राजमहलों म भी कायम थी। राजा के रसोईये जिन्ह “बोटी” कहा जाता है, उनके साथ काम करने वाले “बांठ” हुआ करते थे।

कुछ विद्वानो का कहना है कि पुराने समय म राजाओं के पास जो बांठ होते थे वे हास्य-व्यंग्य के धनी हुआ करते थे। एक जनश्रुति के अनुसार एक दिन समय काटने के लिए मंडी के राजा के बांठ आपस म हंसी-मजाक कर रहे थे। ठेठ गवंई अंदाज म वे राजा की कमजोरियों का भी उल्लेख कर रहे थे। कोई राजा बना था तो कोई राजदरबारी और कोई अधिकारी का अभिनय कर रहा था। जनता से बेगार (लगान) ले जाने तथा राजकर्मियों द्वारा रियाया पर किए जाने वाले अत्याचारों का उल्लेख उस संवाद म किया जा रहा था। यह सब था तो हंसी-मज़ाक के लिए, मगर इसम सही बात या विषेश कथ्य को व्यग्यांत्मक ढंग से अभिनीत करने की अनोखी अदा थी।

राजमहल के ही किसी कोने से राजा भी चुपचाप यह अनुठा संवाद देख-सुन रहा था।

मगर यह सब देखने के बाद राजा ने उन बांठों पर नाराज़ होने के बजाए उन्हें प्रोत्साहित किया। उन्हें अपने पास बुलाकर अपने राज्य व राजमहल में होने वाले षड़यन्त्रों की जानकारी लेने तथा राज-अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों की सूचना देने का ज़िम्मा उन्हें सौंप दिया। राजा ने एक तरह से उन्हें गुप्चर का काम सौंपते हुए यह भी कहा कि राजदरबार या प्रजा में बात बुरी न लगे उसे हास्य रस का पुट देकर उनके सामने प्रस्तुत किया जाए। भले ही उसमें राजा की अपनी ही गलती क्यों न हो। यह राजा की बुद्धिमता ही कही जाएगी कि अपने बांठों की कला का सदुपयोग किया और इस तरह अपने राजकाज की समिक्षा का तरीका निकाल लिया। तभी से मंडी जनपद में बांठों के नाट्य "बांठड़ा" का प्रारम्भ माना जाता है। "बांठड़ा" मंडी व सुकेत रियासत का प्रमुख लोकनाट्य रहा है। इन दोनों ही रियासतों पर सेन वंश के राजाओं का आधिपत्य था। हालांकि कालांतर में दोनों रियासतों के बीच रिश्तों में कड़वाहट के चलते एक-दुसरे पर आक्रमण भी होते रहे। मगर दोनों रियासतों की प्रजा की सांस्कृतिक विरासत सांझी थी, जिसके चलते "बांठड़ा" की लोकप्रियता दोनों ही रियासतों समान थी।

सुकेत रियासत में "बांठड़ा" की परम्परा को लेकर समाज में अलग धारणा है। मगर दोनों ही रियासतों में इसे मनोरंजन के साथ-साथ सूचना व जनचेतना के सशक्त माध्यम के रुप में स्वीकार किया गया था। यही "बांठड़ा" की लोकप्रियता का राज भी रहा है, जो आज तक कायम है। एक जनश्रुति के अनुसार सुकेत के राजा "वीरसेन" के समय में लोग अनपढ़ थे। राजा इस बात से काफी परेशान था। गहन

विचार-विमश के बाद राजा ने अपनी प्रजा को मौखिक शिक्षा देने का मन बनाया, जिससे लोगां का मनोरंजन भी हो जाए तथा उन्ह शिक्षा भी मिल सके। इसके लिए लोकनाट्य विधा हा सबसे कारगर हो सकती थी। नाट्य का इस क्षमता को देखते हुए हा भरतमुनि ने इसे पांचवा वेद करार दिया था।

सुकेत के राजा ने संगीतज्ञ और राज गायक "नरेन्द्र" को इस काम के लिए नियुक्त किया। उसे यह आदेश दिया गया कि वह लोगां के बीच जाकर मौखिक रुप से शिक्षा का प्रचार कर उन्ह जागरुक कर। "नगेन्द्र" ने राजा के आदेश का पालन करते हुए संगीत और गायन के माध्यम से शिक्षा का प्रचार किया। वह गांव-गांव म जाकर एक थड़े यानी बैठने के ऊंचे स्थान पर बैठकर गीत गाते तथा उपदेश सुनाकर लोगां को शिक्षा देते थे। इस प्रथा को राजा ने "बाणथड़ा" (वाणीथड़ा) का नाम दिया। थड़ा जहां से लोगां को वाणी सुनाई जाए। बाद म यहा "बाणथड़ा" शब्द "बांठड़ा" बना। "बांठड़ा" शब्द का यह व्युत्पत्ति सुकेत म मंडी से भिन्न है। इसी संदभ से जुड़ने वाला एक रोचक जनश्रुति भी प्रसिद्ध है। कहते है कि सुकेत के एक राजा के मुंह पर बड़ा-सा फोड़ा हो गया था। दद के कारण वह उस पर चीरा नहां लगाने दे रहा था। राजा ने अपने राज्य म ऐलान कर दिया था कि जो व्यक्ति बिना चीरा लगाए हा इस जार अथात फोड़े को ठाक कर देगा उसे राजकोष से ढेर सारा ईनाम दिया जाएगा। राजा के इस फरमान के बाद बड़े-बड़े हकाम व वैद्य भयभीत हो गए। मगर रियासत का हा एक मस्तमौला आदमी राजा के इस फरमान को सुनकर उसका ईलाज करने को राजी हो गया। निसंदेह हास्य अभिनय के अथ म वह मशहूर बांठ था, जिसे अपनी हास्य कला के माध्यम से राजा के मुंह का फोड़ा फोड़ डालने का भरोसा था। वह

राजा के सामने बैठकर कई तरह के हास-परिहास करने लगा। राजा भी उसकी बातों को सुनकर उन्मुक्त भाव से ठहाके लगाने लगा। और अनवरत ठहाकों के दौर म राजा के मुंह का फोड़ा फट गया और उसम जमा मवाद बाहर निकल पड़ा। इस तरह हंसी-हंसी म ही उसने राजा के फोड़े का इलाज बिना कोई चीरा लगाए ही कर दिया। राजा ने ख़ुश होकर उसे पुरस्कार दिया। कहते ह कि तभी से "बांठड़ा" की यह परम्परा सुकेत रियासत म पूरे जोर से चल पड़ी। श्री रुल्दू राम के अनुसार "बांठड़ा" दो अलग-अलग शब्दो से बना है। पहला बांण अथात बनना और दुसरा थड़ा अथात मंच । उनके अनुसार मंच पर कुछ बनना (चरित्र) ही "बांठड़ा" है।

"बांठड़ा" लोकनाट्य का प्राचीन स्वरुप निस्संदेह वतमान की अपेक्षा अधिक कलात्मक और व्यापक रहा होगा। कुछ वष पहले करसोग निवासी "श्री ज्वाला प्रकाश कौशल्या" को पुरोहित "परसुराम" के घर से किसी गुमनाम लेखक का हस्तलिखित ग्रंथ "बांठड़ा-नाट" प्राप्त हुआ था। "श्री कौशल्या" जी का कहना है कि हस्तलेख की एक पंक्ति से यों लगता है कि यह आलेख संवत् 1628 म लिखा गया है-

"(सौ सोल्हा आठ एक बीसी, मगड़े बारा लिखित मनीसी)," अथात 12 माघ 1628 (सन् 1571) को मनीसी ने लिखा। मनीसी से अभिप्राय मनीषी भी हो सकता है और यह लेखक का नाम भी हो सकता है।

यह समय राजा "वीरसेन" के समय से बहुत बाद का है, जिसके बारे म पूर्वोक्त अनुश्रुति साक्षी है कि उसके समय से "बांठड़ा" आरम्भ हुआ है। मण्डी और सुकेत रियासतो के इतिहास से प्रतीत होता है कि "वीरसेन" राजा "रुपसेन" का पुत्र था। संवत् 1259 के लगभग

"सूरसेन" का मृत्यु पर उसके पुत्र "रुपसेन" ने मुसलमानां को भगा कर रुपनगर (वतमान रोपड़) म रहना आरम्भ किया और दूसरे हा वष मुसलमानां के साथ युद्ध म मारे जाने पर उसके तीन पुत्र रोपड़ से पहाड़ां का ओर भागे तथा "गिरिसेन" ने क्यांथल, "हमीरसेन" ने किश्तवाड़ और "वीरसेन" ने सुकेत राज्यां का स्थापना का। "वीरसेन" का समय संवत् 1268-1303 के लगभग रहा है।

लगता है कि "बांठड़ा" संवत् 1268-1303 से आरम्भ होकर संवत् 1628 तक अपने पूरे यौवन पर था तथा इस तरह "बांठड़ा-नाट" हस्तलेख के लेखक का विवरण उस समय के "बांठड़ा" खेल का वास्तविक रुप है। यह उल्लेखनीय है कि लेखक "श्री ज्वाला प्रकाश कौशल्या" करसोग के रहने वाले ह और उनके अनुसार हस्तलेख पुरोहित "परसुराम" के घर से प्राप्त हुआ है। करसोग, सुकेत और मण्डी एक हा क्षेत्र म पास-पास स्थित है। अतः इस ग्रंथ का मौलिकता और खेल के स्वरुप का वास्विकता पर सन्देह करने के अधिक कारण नहां ह, यद्दपि इस विषय म निश्चित धारणा तब अपनाई जा सकती है जब उक्त हस्तलेख प्रकाशित होकर पाठकां को उपलब्ध हो जाता है।

जिस प्रकार सोलन का "ठोड़ा ग्राउंड" किसी समय इस क्षेत्र म "ठोड़ा" खेल के लिए प्रसिद्ध स्थान था उसी तरह मण्डी का सैरा स्थल "बांठड़ा" का केन्द्र रहा है और पहले समय म मण्डी का शिवरात्री म "बांठड़ा" लोक-मनोरंजन का प्रमुख कायक्रम हुआ करता था। उस समय विभिन्न क्षेत्रों से "बांठड़ा" का अनेक मण्डलियां यहां अपना लोक-नाट्य प्रस्तुत करती थीं। पच्छात सुकेत, और बल्ह क्षेत्र के अतिरिक्त मण्डी जिला से बाहर का मण्डलियां भी इसम भाग लेती थीं। भूतपूव रियासत भज्जी म शाकरा, शकरोड़ी, घरैणा का लोक-

नाट्य मण्डलियां शिमला जिले के मधाण, मण्डी जिले के करसोग, सोलन के वाघल आदि क्षेत्रों के "बांठड़ा" दल बड़े प्रसिद्ध रहे ह।

कांगड़ा क्षेत्र का "भाण्ड" या "वाण्डे" लोक-नाट्य भी मण्डी-बिलासपुर क्षेत्र का "बांठड़ा" ही है। संस्कृत भाण रुपकों म सम्बंधित एक उक्ति-प्रत्युक्ति को आकाशभाषित द्वारा प्रकट करने का विधान था, "यथा- सम्बोधनोक्ति प्रत्युक्ति कुर्यादाकाश भाषितैः"। यह बात बांठड़ा, भांड या वाण्डे के अनेक दृश्यों म देखने को मिलती है। यहां "बांठड़ा" कलाकार या कोई भण्ड अपनी और दूसरों की कुरीतियों को हास्य और वयंग्य-प्रधान अनुभवों द्वारा अकेले ही आकाश की ओर मुंह करके वार्तालाप द्वारा प्रस्तुत करता है। यह अनुभव ग्रामिण परिवेश से सम्बंधित होते ह और ग्राम्य जनजीवन की शैली म ही प्रस्तुत होते ह।

"बांठड़े" के खेल प्रमुखतः दशहरे के मेले के दौरान गोवधन पूजा के त्योहारों से आरम्भ होते ह। अनेक स्थानों पर दिवाली का त्योहार कुछ देवठण तथा मंगरैवली के दिन "बांठड़े" के विशिष्ट अवसर ह और प्रतिवष नवम्बर के अन्त तक ये विभिन्न स्थानों पर आयोजित होत ह। मण्डी और सुकेत के क्षेत्र म आज भी "बांठड़ा" की प्रासंगिता कम नहीं हुई है। शिक्षा, स्वास्थय व अन्य मुद्दों को लेकर चलने वाले जन-अभियानों म लोक-नाट्य "बांठड़ा" की शैली म स्थानिय बोली म तैयार नाटकों के माध्यम से जन-जन तक आज भी संदेश पहुंचाया जाता है। "बांठड़ा" वास्तव म जन-नाट्य शैली का वह सशक्त रुप है जिसके माध्यम से लोकरंजन के साथ सामाजिक चेतना का प्रसार तथा शासक व प्रजा के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान होता था। राजतंत्र के जमाने म इसे राज्याश्र मिला था। राजदरबार म आने वाले विशिष्ट मेहमानों के मनोरंजन के लिए भी "बांठड़ा" का

आयोजन किया जाता रहा है। जिस प्रकार मुगल बादशाहों के दरबारों कवि व शायर होते थे, उसी प्रकार मण्डी रियासत में भी दरबारी "स्वांगी" होते थे, जो विशेष अवसरों पर "बांठड़ा" प्रस्तुत करते थे। उसी दौर में मनोरंजन का प्रमुख साधन "बांठड़ा" ही था, जिसमें हास्यरस की प्रधानता तो रहती थी, मगर बात-बात में ही "बांठड़ा" के कलाकार सामाजिक कुरीतियों व विसंगतियों पर भी हास्याभीनय कर प्रहार करते थे, जिसे तत्कालिन समाज में जागरुकता के संदेश के रुप में देखा जाता था। यही वजह रही कि उस दौर में "बांठड़ा" की प्रस्तुति जहां भी होती, उसे देखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती। "बांठड़ा" कभी भी मंच का लोक- नाट्य नहीं रहा है। खुले आकाश के निचे जहां कहीं भी समतल स्थान मिले इसका मंचन कर दिया जाता.... गांव की चौपाल हो चाहे बड़ी चौकी, जहां कहीं भी "बांठड़ा" प्रस्तुत होने की सूचना मिली, लोग बिन बुलाए ही पहुंच जाते तथा रात-रात भर इसका आनंद लेते।

वाद्य यंत्र :-

"बांठड़ा" में निम्नलिखित वाद्य यंत्र बजाए जाते हैः-

नगाड़ा- नगाड़ा बांठड़े का मुख्य वाद्य है। नगाड़ा तांबे का बना होता है तथा भैंस की खाल से मढ़ा होता है। इसकी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है, इसकी आवाज़ से ही लोगों को पता चलता है कि "बांठड़ा" शुरु होने वाला है। इससे सरल तथा जटिल सभी प्रकार के ठेके बजाए जाते हैं।

डफाल- यह वाद्य यन्त्र एक प्रकार का ढोल जैसा ही होता है। यह लकड़ी का बना होता है, इसको भी भैस की खाल से मढ़ा होता है। इसको दो डंडे (डोंडी) से बजाया जाता है। इसकी आवाज़ नगाड़े से भारी होती है, इसे गायन तथा नृत्य के साथ बजाया जाता है।

ढोलक- यह लकड़ी की बनी होती है। इसको दोनो तरफ़ से बकरे की खाल से मढ़ा हुआ होता है। इसे हाथ से बजाया जाता है। इसे मुख्यतः गाने के साथ बजाया जाता है।

करनाल- यह वाद्य यंत्र मुंह के बजाया जाता है। यह तांबे का बना दोता है। इसकी ध्वनी दूर तक सुनाई देती है। इसे बजाने के लिए लंबी सांस की ज़रुरत होती है। इसे शुभ कोर्यों म भी बजाया जाता है।

शहनाई- यह वाद्य भी मुंह से ही बजाया जाता है। यह लकड़ी की बनी होती है जिसम आठ छेद होते ह। इसे मुंह म दबाकर फुंक के माध्यम से स्वर म बजाया जाता है। शहनाई की मिठी व तीखी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है। इसके साथ ताल वाद्य की संगीत नाट्य प्रस्तुति को मोहक बना देती है।

मंजीरा- यह पीतल की बनी होती है। इसे हाथ के साथ ताल वाद्य के रुप म बजाया जाता है।

प्रस्तुतिः-

किसी उंचे चबूतरे, मंदिर के आहते, गांव के साजनिक प्रांगण म घ्याना (आग) सुलगाकर दशक बैठ जाते ह। गोलाकार खाली स्थान बीच म छोड़ दिया जाता है। इसी खाली जगह पर "बांठड़े" का प्रदशन आयोजित होता है। प्रदशन स्थल के आस-पास ही काम चलाऊ ओट करके "स्वांगी कलाकार" वस्त्र-सज्जा एवं मुख-सज्जा कर लेते ह।

मुख्य प्रदशन-स्थल के एक ओर बजन्तरी दल अपने परम्परागत पहाड़ी वाद्यों के साथ बैठ जाते ह। रोशनी की भी समुचित व्यवस्था की जाती है। बजन्तरी वाद्यों पर लहरिया बजाते ह जो नाटक के शीघ्र आरम्भ होने का संकेत माना जाता है । लहरिया वादन लगभग आधे घण्टे तक जारी रहता है और बहुधा तब तक जारी रहता है जब तक सारे कलाकार नाट्य-प्रदशन हेतु तैयार नहीं हो जाते।

"बांठड़े" का आरम्भ "मंगलाचरण" से होता है। सवप्रथम शिव, तदन्तर गणेश, सरस्वती वन देवी-देवतोओं आदि की आराधना के क्रम म लोक कलाकार उनके स्वरुप धारण करके मंच पर अवतरित होते ह। देवी-देवताओं की झांकियां मनमोहक होती है। सरस्वती स्वयं मंच पर आकर "बांठड़ा मंडली" को नाट्य-प्रदशन म सफल होने का वरदान देती है। इस प्रकार मंगलाचरण पूरा होता है। मंगलाचरण के उपरान्त "करियाले" की तरह साधुओं का स्वांग प्रदशित होता है।

तदन्तर अन्य धार्मिक, पौराणिक और सामाजिक नाटिकाओं यथा शिव-पार्वति, रुप-वसन्त, पूण-भगत, ध्रुवअवतार, राजा हरिशचन्द्र आदि प्रदशित होती है। कभी-कभी नये कथानको का अभिनय भी किया जाता है परन्तु पुराने प्रचलित विषय ही "बांठड़े" म अधिक पसन्द किये जाते ह। विभिन्न नाटिकाओं के बीच-बीच म अतिरिक्त मनोरंजन जुटाने के उद्देश्य से लोक प्रचलित श्रृंगारिक एवं मार्मिक प्रसंगो यथा, रांझू-फूलणु, कुंजू-चंचलो, राजा-गद्दन आदि का गायन एंव

भावाभिनय भी प्रस्तुत किया जाता है। लोक प्रचलित प्रसंगों म गाड को मनमानी, बनिये की सूदखोरी, अशिक्षा से होने वाली परेशानियाँ आदि का परिहासात्मक कथन किया जाता है। "बांठड़ा नृत्य एंव गीत" भी इस लोक-नाट्य की विशिष्टता को घोतक है। "स्वांगी" प्रसंगानुकूल वेशभूषा धारण करते ह, नतक परम्परागत वेशभूषा म सजे-सवर नृत्य करते ह। कलाकार स्वयं भी गायन करते ह और पास बैठे गायक भी प्रसंग गायन म भाग लेते ह।

"बांठड़े लोकनाट्य" की भाषा म स्थानियपुट के साथ-साथ पहाड़ी की अन्य जनपदीय भाषाओं एंव हिन्दी का ऐसा सम्मिश्रण होता है जो नाटक की भाषा को सहज-सुगम और चटपटा बना देता है ताकि अधिकाधिक दशक एकाग्र होकर कथानकों म रुचि ले सके।

"बांठड़ा लोकनाट्य" म प्रयुक्त खिचड़ी भाषा की वानगी का एक नमूना पेश है-

सुमिरत हूं गणपति महाराज,
डोलत तरणी आज बचाइयो लाज।
प्रकट हो मम काज।।
सुमरित हूं गणपति महाराज
सभा म आइयो, लाज बचाइयो,
मोद मनाइयो, मान बढ़ाइयो,
बजाइयो सुभसाज।
सुमिरत हूं, गणपति महाराज।।

(स्वांगाभिनयों का परिचय देते हुए सूत्रधार)

सभी जणों से विणति है, हमारे आज
हरिचन्द्र बांठड़ा सजा है। बालक मठड़े,
अनजान है। गलतियां मने मत लाइयो।

हरिशचन्द्र राजा एक सचवादी था।
अपना राजकाज स्वाहा कर दियो,
धरम से मुख न मोड़ियो।

“बांठड़ा” नाटक का अन्त स्थानिय देवी-देवताओं की आरती के साथ होता है। नाटक की सफलता के लिए देवी-देवताओं का आभार स्तुति रुप म किया जाता है-

बलि-बलि जां बलिहारी बलि जां दुग,
आरती करावां तेरी मां, बलि-बलि जां।

शिव-पावती के खेल म शिव और पावती का सन्दभ दाके हुए एक होने वाली मूख सास का चरित्र प्रस्तुत होता है। भगवान शिव की आज्ञा का उल्लंघन होने पर शिव रुष्ट होकर निज-भाया सती को त्याग कर कैलाश पवत पर चले जाते ह। अगले जन्म म सती ने हिमालय पवत की पुत्री के रुप म जन्म लिया। तब सती का नाम पावती पड़ा। सती की परिक्षा लेने के लिए भगवान शिव साधु के वेश म हिमालय के घर पहुंचते ह। हिमालय की पत्नी- शिवजी की होने वाली सास, शिवजी को नहीं पहचानती। वह दूर पार की ओर आने वाले रावल की जनेत (बारात) के उस भस्म-धारी साधु को अपनी पुत्री विवाह म नहीं देगी-

पारा ओरु आऔ ताता राउड़ो जनेत
एऊ भस्मा पोकी ले बेटी न देऊं

यह कहकर शिव भी उसको डायन कह कर उसकी पुत्री से विवाह न करने का निश्चय सुनाता है-

डैणा डनैलड़ी मूं-बी न बियाऊं।

तब शिवजी ने अपना असल रुप प्रकट किया- सिर स्वग से लगाया और पैर पाताल तक पहुंचा दिए-

करे-करे ईसरा आपणो रुप

सिर लाओ सरगै पैर लाओ पैइयै ताड़ै

यह रुप देखकर बुढ़िया सास की आंखे खुल गई। उसे अपनी भूल का अनुभव हो गया। क्षमा मांगी और कहा- तुझे अर्क देती हूं, सुगन्धित धुप चढ़ाती हूं। तू भी डायन न बोल, मैं भी रावल नहीं कहूंगी-

करे-करे ईशारा आपणा रुप,

तुलै देऊं आरगा, तुलै बशंदरा धूप,

तू नी बोलो डैणा, मूं न बोलू राऊड़ा

प्रचलित शिव, वन्यदेवता, गणपति, सरस्वती आदि देवों की आराधना के बाद "बांठड़ा" का मूल नाट्य सर्वदा हिन्दी और पहाड़ी के मिश्रण बोली में प्रस्तुत होता है। भाषा का यह चटपटा स्वरुप नाट्य को अधिक रोचक बनाता है। इसमें संवाद चुस्त और भाषा प्रभावशाली होती है। अनपढ़ समाज के लिए ऐसी भाषा विशेष रुप से लाभदायक होती है। इससे कथानक के क्रम को समझने के लिए एकाग्रता बनी रहती है।

इन धार्मिक और पौराणिक विषयों के अतिरिक्त "बांठड़े" में स्थानिय लोक-साहित्य और संस्कृति के विषय भी छोटे-छोटे रुपकों में प्रस्तुत होते हैं। इसमें रांझू-फूलणू, कुंजू-चंचलो, राजा- गद्दन आदि के खेल बहुत प्रसिद्ध हैं। यह लोक-गीतों की धुनों और संगीत पर आधारित होते हैं जहां श्रृंगार और वियोग की भावना जागृत रहती है-

कपड़े धोआं छम-छम रोआं चंचलो, बिच कै बौ नसाणी हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बिच कै बौ नसाणी हो।
कपड़े धोआं छम-छम रोआं चंचलो, बिच बटण नसाणी हो।
हाय बो मेरिए जिन्दे बटण नसाणी हो।

लोक-कथाओं पर आधारित रुपकों का सीधा सम्बध दर्शकों से होता है। वे समाज की परिस्थितियों से जुड़े होते ह। वे ऐसे कथानक नहीं होते जिन्ह पात्र स्वयं नहीं जीता, न वे लोकमान्य जीवन से अलग-थलग पड़ते ह। ग्राम्यचल म गाई जाने वाली लोक-गाथाएं इन लोक-नाट्यों को जीवन देती ह। वे किसी चरित्र विशेष की बात करती ह। प्रसंग से प्रसंग जुड़ते ह। लोक-गीतों और गाथाओं के रचयिता का कोई पता नहीं है। गाथाकार के कण्ठ म पात्र स्वयं विराज करते ह। उसके माध्यम से वे गाते ह, नाचते ह तथा अनेक तरह की लीलाएं करते ह। रांझू और फूलणू की लोक-गाथा म सामाजिक परिस्थितियों का सही चित्रण प्रस्तुत होता है-

वाड़ुवे सगाड़ुवे कजो झांदी ब-लीए कजो झांकदी
दो हत्थ बटणा दे लायां फुलणू गलां हुई बीतीयां
कुणी पुरोहित तेरा व्याह लिखेया, कुणी कीती कड़माई
कुले रे पुरोहिते ब्याह लिखेया, बापूए कीती कड़माई,
गलां हुई बीतीयां।

लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं के साथ-साथ "बाठड़े" म समाज की वतमान परिस्थितियों को भी रुपक के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गाड के स्वांग म घूसखोर गाड का चित्रण प्रस्तुत होता है-

"पांच मांगे दस देणे हो गाडा, तू मेरी रिपोट मत करदा।"

"बांठड़ा" म अभिनीत किए जाने वाले विभिन्न दृश्यों को "स्वांग" तथा इसके कलाकारों को "स्वांगी" कहा जाता है। मंडयाली म "स्वांग" का शाब्दिक अथ है- "नकल" तथा "हास्य अभिनय", जिसम मुख्यतः किसी की नकल उतारकर उसी के सामने अभिनय करने का प्रयास किया जाता है। "बांठड़ा" का कोई लिखित आलेख नहीं होता। मगर उस दौरान पेश किए जाने वाले "स्वांगों" का एक क्रम निर्धारित रहता

है। “बांठड़ा” का शुभारंभ “हरिरंग” व पूजा के साथ होता है। जो रास नृत्य जैसा होता है। इसके पश्चात माल का स्वांग किया जाता है।

“बांठड़ा” के विभिन्न स्वांगों का कथ्य भी सामाजिक व समसामयिक घटनाओं पर आधारित होता है। लोक कलाकारों द्वारा ही “बांठड़ा” के चरित्र व कथानक का तानाबाना जुबानी बुना जाता है। जब “बांठड़ा” का काफी प्रचलन था तो कई गांवों में इसे प्रस्तुत करने वाली पार्टियां थीं। कई दरबारी “स्वांगी” थे। जब राज दरबार में कोई विशेष आयोजन होता था तो उन्हें “बांठड़ा” की प्रस्तुति के लिए राज दरबार से बुलावा भेजा जाता था। कभी-कभी दो-तीन “बांठड़ा” दलों को आमंत्रित करके उनमें मुकाबला करवाया जाता था। जीतने वाली पार्टी को विशेष पुरस्कार दिया जाता था। इसे “बांठड़ा” दलों की प्रतियोगिता ही कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय मण्डी-सुकेत में “बांठड़ा” का कितना प्रचलन रहा होगा। दरअसल ये उस जमाने की बात है जब मनोरंजन के प्रमुख साधन लोक-नाट्य, नृत्य या मेले-त्यौहार के दूसरे खेल-तमाशे ही होते थे। उस जमाने में लोगों ने बांठड़ा के रुप में एक स्वस्थ और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला “लोक-नाट्य बांठड़ा” स्वयं ईजाद किया था, जो आज के विभिन्न व्यवसायमूलक मनेरंजन साधनों से कहीं अधिक साथक था।

“बांठड़ा” के गी-गण, साधु, साह-साहणी आदि पर केन्द्रित स्वांगों में तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था की खामियों की ओर इशारा किया जाता है। जैसे साह-साहणी के स्वांग में राजतंत्र के समय में व्याप्त मुजरा प्रथा का चित्रण किया गया है। जिसमें शहर के भू-मालिकों द्वारा ग्रामीण किसानों के शोषण किए जाने का वृत्तांत रोचक ढ़ग से व्यक्त किया जाता रहा है। डाऊ के स्वांग में ढ़ोंगी चेलों तथा साधु के

स्वांग म पाखंडी साधुओं को बेनकाब किया जाता है। "बांठड़ा" म धार्मिक चरित्रों के माध्यम से पोंगापंथी अंधविश्वासों को बढ़ावा नहीं दिया गया। "बांठड़ा" के चरित्र न तो देवलोक के वासी रहे ह और न ही बड़े राजघरानों की विलासितापूण कथाओं को इसम जगह मिली है। आम जन् दुख-सुख व विषाद हास्य के माध्यम से मुखरित होते ह, वहीं पर जन-नाट्य होकर भी यह गंभीर सामाजिक संदेश देता है। जो इसकी सबसे बड़ी ताकत भी है।

"बांठड़ा" के नायक समाज के विभिन्न वर्गों के श्रमजीवी लोग ही रहे ह जो अपने समय की सानाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था म शोषण के शिकार रहते ह, जो तात्कालिक व्यवस्था तंत्र की कारगुज़ारियों पर नज़र रखत हुए सत्य को हास्य रुप देकर सीधे व्यवस्था पर चोट करते रहे ह। "बांठड़ा" अपने समय की सामाजिक व्यवस्था का आईना रहा है, जिसके माध्यम से तात्कालिक समाज की तस्वीर को साफ-साफ देखा जा सकता है।

"साहब और मेम" का स्वांग अंग्रेजी हुकूमत की उस नीति को उजागर करता है, जिसके तहत फूट डालो और राज करो की कहावत को चरिताथ करते हूए अंग्रेजों ने लंबे समय तक हिंदुस्थान पर राज किया था। इस स्वांग म लोक कलाकारों ने अंग्रेज और जमन के बीच कर उगाही को लेकर लड़ाई को दुसरे महायुद्ध के प्रतीक के रुप म प्रस्तुत किया है। चूंकि अंग्रेजों की ओर से इस लड़ाई को हिन्दुस्तानी लड़ रहे थे, जाहिर है इस जंग म जीत हिन्दुस्तानियों की होनी थी। मगर जीत का श्रेय लूटने वाले वही गोरे थे, जिन्होने सकड़ो सालों तक इस विशाल भू-भाग पर अपना साम्राज्य चलाया।

मंगलाचरण:-

मनौती पूण होने पर किए जाने वाले “बांठड़ा”- आयोजन म धाम (भोज) भी दा जाती है। कभी बकरे और मेढ़े भी काटे जाते थे। परन्तु अब ऐसा देखने म नहा आता। अपने मौलिक और आरम्भिक रुप म “बांठड़ा” अपने प्रातपक्षी कारयाला से भिन्न रहा है। “बांठड़े” का असल रुप, जो सभी क्षेत्रों म लगभग समान रुप से प्रचालत रहा है। “बांठड़ा नाट” म उल्लिखित है कि “बांठड़ा खेल” का आरम्भ तब तक नहा होता जब तक विभिन्न प्रकार का देवस्तुात तथा मंगलाचरण नहा हो लेता। सवप्रथम नाट्य परम्परा और विद्या के प्रदाता शिव का मंगलाचरण होता है-

सुमरो शिव देवा,
जगती तारण, संकट हारण,
चन्द्रधारण, खलजन मारण,
गण-रक्षक जनरत सेवा।
सुमिरो शिव देवा।।

मसाना निवासा, नित सुख हासा,
जय लोक प्रकाश, क्रोध-ताण्डव लासा.
भांग चतुराई लेवा।
सुमिरो शिव देवा।।

कर जोड़े हाथा, तब चरण पै माथा,
भोले नाथा, सुण करना गाथा,
रख लौ पत मेवा।
सुमिरो शिव देवा।।

तत्पश्चात विभिन्न अन्य देवों म सवप्रथम अथात् वन्यदेवता की पूजा की जाती है। जंगली को झांकी के रुप म प्रस्तुत किया जाता है। उनके शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल, गले म फूल-पत्तों के हार, शरीर ह्रष्ट-पुष्ट, मुखाकृति लाल और रुप भयंकर होता है जिससे डर लगता है। वन्यदेवता की आराधना सभी कलाकार इस प्रकार करते ह-

जंगल म मंगल करतारे,
तब किरपा मांगत दास।
सुभ सगन से झोली भरतारे,
कर कारज सुफुल प्रकास।
तब किरपा मांगत दास।

अपनी स्तुति सुनते ही जंगली महाराज पूछते ह-

तुमने जो मेरी आराधना की है उसका क्या कारण है। म अपने रंगमहल म बैठा वन-परियों और किन्नरियों से आलाप कर रहा था। तुम्हारी वाणी सुन कर सभा म प्रस्तुत हुआ हूं। तुम्हारे मन म जो बात है उसका कथन करो।

इस पर नाट्य का सूत्रधार प्राथना करता है कि हे जंगली महाराज, हमारे आज "बांठड़ा नाट" का कारज है। पात्र बुद्धि के हीन ह, उन्ह बुद्धि का वरदान मिलना चाहिए।

यह सुन कर वन्यदेवता कुछ सोच-विचार के पश्चात उत्तर देते ह- हमारे म इतना सामथ्य नहीं है, तुम गणपति की आराधना करो। तब गणपति की पूजा-स्तुति की जाती है-

सुमिरत हूं गणपति महाराज,
डोलत तरणी आज बचाई लाज।
प्रकट हो मम काज।।
सुमिरत हूं गणपति महाराज,

सभा म आइयो, लाज बचाईयो,
मोद मनाइयो, मान बढ़ाइयो,
बजाईयो सुभसाज।
सुमिरत हूं गणपति महाराज।।

भक्तों को पुकार सुन कर गणपति मंच पर आते ह और पूछते ह- हे सूत्रधात्र, तुने जो मेरी आराधना की वो किसलिए। म अपने पूजा स्थल म बैठा भगती म लीन था। तेरी वाणी सुनकर सभा म प्रकट हुआ। तेरे मन की जो इच्छा हो सो मेरे पास कथन करो।

सूत्रधार अपनी पूव प्राथना दोहराते ह- गणपति जी महाराज, हमारे आज "बांठड़ा नाट्" कारज है।

गणपति- मुझ म इतना सामथ्य नहीं। तुम सरस्वती की आराधना करो। इसके बाद सरस्वती देवी की आराधना की जाती है। सरस्वती जी भी सभा-स्थल पर उपस्थित होकर पूछती है.....

हे सूत्रधार, तुने तो मेरी आराधना किसलिए की, म अपने माता-पिता के पास बैठी तानमृत कर रही थी, तेरी वाणी सुन कर सभा म प्राप्त हुई हूं। जो तेरे मन की इच्छा है सो मेरे पास कथन कर।

सूत्रधार- हे वरदायिणि देवी, हमारे आज "बांठड़ा नाट" कारज है। पात्र बुद्धि के हीन ह। उन्ह बुद्धि का वरदान मिलना चाहिए। सरस्वती उनके तथास्तु कह कर वरदान देती हुई मंच से प्रस्थान करती है।

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि "बांठड़ा लेक-नाट्य" की विशेष मयादा और परम्परा रही है तथा इसका आरम्भ शिव के मंगलाचरण के बाद देवताओं की आराधना से होता है। इनम से गणपति और सरस्वती हिन्दु समाज के पौराणिक देव-देवी ह, गणेश और सरस्वती भारतीय समाज की ऐसी दैवी शक्तियां है कि उनकी

आराधना किए बिना कोई काय आरम्भ नहां किया जाता। सरस्वती विद्या का देवी है और गणेश ज्ञान के भण्डार और प्रदायक ह। भारत के सुशिक्षित और अशिक्षित दोनां समाज म उनका समान सम्मान है। अतः "बांठड़े" के अरम्भ म उनका विशिष्ट स्थान कोई अपवाद नहां है।

परन्तु वन्य-देव इस पहाड़ी क्षेत्र का संस्कृति का विशिष्ट उपज है। जंगलो हिमाचल प्रदेश के भू-देवता का एक रुप है। जिस प्रकार थान, थनपाल (स्थानपाल), खेत्रपाल (क्षेत्रपाल) ओड़ी और सा-दग (भू-स्वामी) आदि विभिन्न नामां से पुकारे जाने वाले देवता खेतां और अन्न के स्वामी होते ह, उसी तरह जंगलो, पहाड़िया. पवतेशवर, बोणदेऊ, वणदेव, कलौणी, जोतडू आदि नाम से वन देवता भी बड़े प्रसिद्ध ह जो न केवल ग्वालां, चरवाहां, गद्दियां, पुहालां के पशुधन का रक्षा करते ह, वरन् जंगल-विशेष के स्वामी भी होते ह और अनेक स्थानां पर उनका पूजा किए बिना किसी बड़े वृक्ष को काटा नहां जाता अन्यथा किसी न किसी तरह का हानि या आपत्ति का होना अवश्यंभावी है। "बांठड़ा लोक-नाट्य" के आरम्भ म उसे भयंकर रुप म दिखाना उसका शक्ति को स्वीकारना है। इसीलिए उसे शिव के बाद और अन्य दो देवां से पहला स्थान दिया गया है, यद्पि उसने अपनी असमथता दिखाते हुए गणपति के पास जाने का संकेत दिया है। यह स्वाभाविक भी है। स्थानिय देवी-देवता वैदिक और पौराणिक देवताओं को अपना अगुआ (गुरु) मानते ह और उनका आदर करना अपना कतव्य समझते ह। उनसे ऊपर जो होगा वह दानव है और वह ऐसा हा अस्वाभाविक और विरुपक है जैसे सिर से ऊंचे किसी के घुटने हां- "देऊआ-न उथड़े दानू, मुण्डा-न उथड़े जानू"। ऐसी स्थिति म वन्यदेवता गणपति के पास जाने के लिए स्वभाव से आग्रह करता है,

अन्यथा वह अत्यन्त शक्तिशाली है और हर खाली स्थान का स्वामी है। यदि इस शक्तिशाली वणदेव की आराधना न की जाए तो खेल म भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस विघ्न डालते ह, और किसी अनिष्ट की शंका रहती है।

बाठड़ा स्वांग:-

“स्वाग” अथवा “सांग” बहुत पुराना शब्द है जिसका संबंध लोकधर्मी प्रदशन से रहा है| “स्वांग” शब्द का अथ है “वेश भरना”। “वेश भरने” की यह प्रक्रिया सदैव दो कार्यो के लिए होती रही है-मंच पर अभिनय करने के लिए और गुप्तचर का काय करने के लिए कभी-कभी इसका रुप देवी-देवताओं के पूजन के समय भी दिखाई देता है। विवाह आदि के अवसर पर भी कई रुपों म “स्वांग भर” कर प्रदशन करने की परंपरा है। “लोक नाटक स्वांग” का संबंध अभिनय के लिऐ प्रयुक्त वेश भरने की प्रक्रिया से भी है। “स्वांग लोक” कला के श्रेष्टतम रुप है। वे हम आनंदित भी करते ह और निदश भी देते है। ये “सवांग” हम व्यक्ति निमाण एवं समाज निमाण दोनों के लिए पयाप्त बोध देते ह। यह बोध इतना सरल, इतना निश्छल और संगीतमय होता है कि वह हम उपदेश या शिक्षा जैसा नहीं लगता। स्वांग हमारे सामने जो बोध प्रस्तुत करता है उसका आधार कभी इतिहास होता है, कभी पुराण, कभी हमारे दैनिक जीवन की प्रख्यात घटनाएं।

व्यापक अथ म “स्वांग लोक-नाट्य” की संपुण विधा का प्रतिनिधित्व शब्द है। मूलत: “स्वांग” किसी भी ऐसे प्रदशन को कहा जाता है जहां जनता को जोड़ कर किसी कथानक को किसी भी रुप म

खेल कर मनोरंजन किया जाए या कोई नक़ल आदि की जाए। बाद म "स्वांग" शब्द लोक नाटक के लिए प्रयुक्त होने लगा। लोक नाट्य के वे रुप जिनके साथ धार्मिकता जुड़ी है अवश्य "स्वांग" नहीं कहे जाते। उदाहरण के लिए रामलीला और रासलीला को स्वांग नहीं कहा जाता परंतु शेष लोकानुरंजन करने वाले और लौकिक कथानकों पर आधारित सभी लोक नाटक "स्वांग" ही ह।

दर्शकों का मनोरंजन करना और उससे भी ज्यादा उन्ह हंसाना इन "स्वांगों" का मूल उदेश्य था और हास-परिहास के साथ-साथ कुछ "स्वांग" इन सामाजिक कुरीतियों आदि पर व्यंग्य अवश्य कसते थे। स्थिति कुछ भी हो लोक रंगमंचीय शैली की नज़र से "बांठड़ा" एक सशक्त विधा थी।

उदाहरण के लिए प्रस्तुत है कुछ स्वांग :-

सन्यार- सन्यारनी का स्वांग:-

इस "स्वांग" म सुनार वग की इस सामाजिक कुरीतियों को उजागर किया गया है कि जब कोई ग्राहक पुराना आभूषण अथवा सोना लेकर नया आभूषण बनाने सुनार के पास जाता है तो उस काय के लिए जितने तोले उसे दिया जाता है, वह उतने तोल का आभूषण बना कर नहीं देता और जब ग्राहक उससे इस बात पर प्रश्नचिन्ह लगाता है तो उसका जवाब यही रहता है कि कुछ तो सोना आग म फूंक गया और

कुछ टांके म गल गया। यह सामाजिक कुरीति अथवा इस वग की प्रवृत्ति प्राचीन समय म भी थी और आज भी विद्यमान है।

इस "स्वांग" म लंबरदार संन्यारी (सुनारी) को चिकोटी मारता है। मोटे रुप म तो यह लगता है कि वह एक महिला से इस प्रकार की हरकत करके ठरक फोड़ रहा है। ठेठ लोक नाट्य "बांठड़ा" का यह ही एक ऐसा "स्वांग" है जिसम अचानक फूहड़पन महसूस होने लगता है जबकि इस बात को छोड़ दिया जाए तो इस "स्वांग" सहित समस्त "स्वांग" बहुत ही सुसंस्कृत ढ़ंग से प्रस्तुत किए जाते रहे ह। बारिकी से देखा जाए तो यह चिकोटी एक प्रतीकात्मक रुप की अभिव्यक्ति है। वही सोने को चिकोटी मारने वाली बात हुई न? यानी सोने म से कुछ सोना खिसका लेना। इस अंदाज़ म यह "स्वांग" अन्य विशिष्ट "स्वांगी" म से और अधिक विशिष्ट और अनूठा है।

गीत :- ओए सन्यारीए तेरा घाघरा हुआ बे पुराणा
चल मुइए आसे आज बांठड़े ते नवां सयाणा आसा बांठड़े जो जाणा
नवां घाघरा सयाणा।
लंबरदार- देखो भाइयो! तुसे केथी ते आए ?
सन्यार - बोले महाराज ! आसे आए मंडी ते न जी आसे पुजे (पहुंचे)। सोचया सकेता लगी रे बांठड़े ता लोका ते काम कराणा हुंआ, गैहणे-गुहणे बणवाणे हुंघे होर भन्वाणे (तुड़वाने) हुंघे ता भई एस खातर आसे बांठड़े जो आई गए। (लंबरदार सन्यारी को चिकोटी मारता है)
सन्यारी- ओए मुंजो चिंढु (चिकोटी) दोया कराहां लंबरदार, मरंडा देया करांहा।
सन्यार- लंबरदार! तू माह कने गल (बात) करांहां कि सन्यारी कने ?

लंबरदार- बोले न न तुसा कने करांहा गल सन्यारा। एहड़ी गल हो हांऊं थोड़े छेड़ेया करांह। (लंबरदार मंच पर चक्कर भी काटता रहता, बात भी करता रहता और चिकोटी भी मारता रहता।)

सन्यार- लंबरदार, तू माह् कने कर गल, सन्यारी कने नी कर।

लंबरदार- एथी मेला भरी रा एडडा (इतना बड़ा) महाराज ! एथी बहुत आई री जनाना। सन्यारी हो बांकी नी हो।

सन्यार- चल ओ सन्यारिए, तू हांढ (चलना) अगे, हांऊं हांढुं पिछे।

(सन्यारी आगे होती है, लंबरदार भी आगे हो जाता है)

सन्यार- बोले ओ सन्यारिए ! ए लंबरदार किछ मुंजो एहड़ा हे लगाहां घटिया।

सन्यारी- केहड़ा घटिया हा, खरा हा। देखणे- सुनणे जो इतना बांका हा, चुस्त हा।

सन्यार- किछ काम नी करदा ठीक।

सन्यारी- न-न जी, काम ता ठीक करांहा।

(लंबरदार फिर सन्यारी को चिकोटी मारता है।)

सन्यार- लंबरदार, चिंढु नी दे। डेरे रा प्रबन्ध कर आसा कठे। किछ क्वाटर-क्युटर मिली जाहां ता ठीक हा।

लंबरदार- ता तुसा जो ए जगा रही। तुसे एथी काम करा।

(गहने बनवाने के लिए दो चंद्रावलियां प्रवेश करती है।)

चंद्रावली- भई आसा गहणे बणवाणे थे तुसा ते ता क्या लघे?

सन्यार- तुसे ल्यावा माल फेरी आसे गल करघे।

चंद्रावली- आसे ल्यावह माल।

(दोनो चली जाती ह और फिर आ जाती ह।)

चंद्रवली- भई ता गहणे बणवाणे जो आई गए आसे।

सन्यार- तिसे बारी-बारी आवा कल्ही-कल्ही (अकेले-अकेले) ता तेभे तुसा ते आसा जो मुनाफ़ा खरा हुणा।

सन्यारी- भई अच्छा हा, खरी गल ही पर देख सन्यारा, एहड़ा हा, यों जनाना ही बांकिया। तेरा दिल ता नी अटकी जाहंगा लालचा मंझ।

सन्यार- न-न सन्यारिए, एहड़ा नी सोच तू।

सन्यारी- ता खरा हा। (एक चंद्रावली प्रवेश करती है।)

चंद्रावली- मेरे काना जो बणाई दे झूमर।

सन्यार- सुइना देणा पौणा।

चंद्रावली- (तोला भर अशरफ़ी देते हुए) ता महाराज, एक तोला सुइना लावा ता बणाई देवा हुण।

सन्यार- तुसा काल औणा तेभे बणाई रखघा।

(वह चली जाती है ऐर दुसरी चंद्रावली प्रवेश करती है।)

चंद्रावली2- मुंजो बनाणी नाका री बेसर।

(उससे भी तोला भर सोना रखवा लेना। उसने झूमर और बेसर दोनों बना देने और दो-दो माशे सोना निकाल लेना। अगले दिन दोनों ने बारी-बारी आना।)

चंद्रावली1- बणी गई म्हारी चीज़ ?

सन्यार- हां बणी गई।

चंद्रावली1- बोले तोला-तोला कने पूरी ?

सन्यार- इन्हां अंदर घाटा-बाधा किछ नी हा, पूरी ही। (ऐसे ही दूसरी चंद्रावली आकर अपना गहना ले जाती।)

चंद्रावली1 का पति- तुसे ता सुइना जादा दिता था। कम की आया।

चंद्रावली 1- पता नी महाराज। ए ता सन्यारा जो हुणा पता। तिने ता

आसा जो पूरा दिता। (चंद्रावली सन्यार के पास पहुंच जाती है ऐसे ही दूसरी भी आ जाती है।)

दोनों चंद्रावलीयां- ओ सन्यारा ता एहड़ा हा न, त सुइना कम दिता।

सन्यार- बोले महाराज। इन्हा गला छाडा तुसे किछ ता आगी मंझा फुखी जाहां सेका कने। किछ टांके-टुंके कने गली जाहां। बची-बचाऊ कने तुसा तो देई दिता।

सन्यारी- (चंद्रावलीयों से) ओ महारा। इन्हां गला छाडा। मेरा सन्यार एहड़ा हा, मावा रे झुमके बी नी छाडे। तिंधि ते बी इन्हयो टुकी कने खाई लैह। सन्यार एहड़े हुह। बाबा इन्हां ते जान छुड़ाओ ता आपण-आपणे घरा जाओ।

(वादकों के पास खड़े होकर गायक गीत गाते और सन्यार-सन्यारी लाहुली पर नाचते।)

ओ बालु भानी ओ दिता
पाया बोले तेस सन्यारा री हीका।
ओ बालु कुंडेला तोड़ेया
पाया बोले चेस छोरु री हीका।

साल के एक झूठ का स्वांग:-

इस "स्वांग" म यह अभिव्यक्त किया गया है कि किंचित ऐसे नौकर जो अपनी मालकिनों (सेठानियों) की हर प्रकार की झाड़ तथा मार हंसी- हंसी सहन कर लेते ह, वे मौक़ा ताकते ही उनसे काम-संबंध बना लेने म भी नहीं चूकते, भले ही सेठ पैसा कमाने के चक्कर म अपनी सेठानियों को तवज्जो दे रहे हों या नहीं और फिर कभी अवसर देखते ही बड़ी चालाकी से उनका बेवकूफ़ बनाने म भी पिछे

नहीं रहते। बावजूद इसके वे अपने मालिक-मालकिनों की नज़र में स्नेही बने रहते हैं।

(लुडडी लात पर चार गायक गीत गाते तथा एक साह, एक साहणी और एक नौकर मंच पर चक्कर लगाते हैं।)

गीत- उडड परदेसिया भौरा हो

आसा पुजणा ठाकरा रे दवारा हो। (लंबरदार का प्रवेश)

लंबरदार- ओ भाउओ! तुसे केथी ते आए, केथी जो चलो रे?

साह- एहड़ा हा महाराज। सकेता रे बांठड़े लगी रे ता आसे सोचया, आसे भी घुमी-फीरी आइए। ओ आपणी देख-सुण ओरे-परे करी लइए। बाकी एहड़ा हा महाराज। नौकर बी चाहिए था आसा जो साओगी ता आसा जो नौकर करी देआ एक।

लंबरदार- नौकर मिलो जांहगा ता आसे करी दघे।

साह- बोल आसा जो बैठणे जो जगा देई देया।

(बैठने को जगह मिल जाती है। नौकर मंच पर घूमता है।)

लंबरदार- ओ भाउआ! केथी हे तेरे घर, केथी जो चलीरा तू?

नौकर- महाराज हांऊ आया बाल्हा ते। ऐथी लगी रे सुंदरनगरा रे राजे रे बांठड़े। हांऊ नोकरिया कठे चलो रा। केते मिलो जाहंगी ता तेथी हांऊ काम-काज करी लघा।

लंबरदार- बोले ठीक हा। एथी आई रे मंडी ते खतरी- खतरेयाणी ता तिन्हां जो नौकर चाहिए। (नौकर साह- साहणी के पास जाता है)

नौकर- साह जी! राम-राम।

(उसे साहणी भी अच्छी लगी और साह भी और वह नौकरी को तैयार हो जाता है।)

साह- भाऊआ। एहड़ा काम हा, आसा रा सब किछ करणा पौणा। नाराज ता नी हुंघा?

नौकर- नईं जी, हांऊं नी हुंदा नराज।

साह- एहड़ा जे म्हारी साहणी हा पांज जुते रोज बांहीं (मारना), तुज्जो सैहणे-पौणे। नराज हुंघा तेबे नौकरी नी हुंणी।

नौकर- महाराज। एसा गला मानी लैहा। चल पांज जुते हे सही।

साह- तिज्जो टका ध्याड़ा दघे। खाणे-पीणे जो साओगी पर एहड़ा जे साहणी रे कपड़े-कापड़े, सुथणे-साथणू धोणे पौणे। बोल नराज ता नी हुंघा?

नौकर- न-न हांऊं नी हुंदा नराज।

साह- एहड़ा जे भई, कोई भांड़ा-भूंडा भजी जाओ ता साहणी दो-चार बांहीं दघी ता नराज ता नी हुंघा?

नौकर- न जी न हांऊं नी हुंघा नराज। बोले साह जी एक गल होर बी हांऊं साला रा एक बारी झूठ गलांहां तेबे तुसे ता नी हुंघ नराज।

साह- आसा ता रोज झूठ गलाणा, रोज जुते बाहणे ता एक-आध बारी तू झूठ गलांघा ता क्या हुणा। साला रा ता हुणा से। तेबे ता तू रैह एथी नौकर

(नौकर काम करता है। साहणी पांच जुते मारती है, वह नाराज नहीं होता।)

साहणी- (नौकर से) मां जाणा था पेओके (माईका) जो ता तू मुंजो पेओके पुजाई सकांहा।

नौकर- हां जी।

साह- तुसे जाई आओ, म घरा संभाला करं।

(साहणी नौकर के साथ मायके को रवाना होती है)

नोकर- (रास्ते म) बोले साहणी एक गल हा कि पेओके इतना दूर हा ता राती रैहणा केते ओरे हे।

साहणी- ता नोकरा तेरी मरजी, हांडणा ता तेरे साओगी पौणा।

(वे रास्ते म ठहर जाते ह। नौकर साहणी से कुछ स्टंप-स्टंप यानी कुछ शरारत बाज़ी करता है।)

साहणी- ता एहड़ा हा मुआ जे मेरे साह जो पता लगेया ता तिन्हां तू मारी देणा।

नौकर- बोले साहणिए। एहड़ा नी हुंदा किछ बी। बोले दो रोटी साहे सटी, एक रोटी हांऊ बी सटघा ता क्या फ़क पौणा। तवा ता तपी रा हा।

(प्रतिकात्मक संवादों के माध्यम से संभोग करने की बात दशाई गई है। अगले दिन वह साहणी को मायके पहंचा देता है।)

साहणी- तू एहड़ा कर कि साह जो पता-सता दे, आसे राजी-बाजी पुजी गए।

नोकर- अच्छा जी हांऊ जाऊं ? (वापस आकर) साह जी! राम-राम।

साह- बोलो मुआ नोकरा ! आई गया तू ?

नौकर- हां जी।

साह- केहड़ी साहणी ?

नौकर- महाराज ! ठीक-ठाक हा। पर एहड़ा जे तुसा रा आओणा-जाणा घटी रा। साहणिया बोले, मजे कने आओणा तुसा।

साह- तू जाई आओ। पता करी आओ। साहणी केहड़ी हा।

नौकर- भई ता हांऊ करी आऊं पता जी।

(नौकर साहणी के पास पहुंचता है।)

नौकर- महाराज साहणी जी। आद (याद) किता हांऊ ?

साहणी- नोकरा तू राजी-बाजी ?

नौकर- (रोने का नाटक करते हुए) ओ जी साहणिए। बुरा काम हुआ।

साहणी- हुआ क्या ?

नौकर- साह होरा नई रैहे।

साहणी- केहड़े नी रैहे ?

नौकर- साह होरा चला गए।

साहणी- केथी जो गए ? खेपा (व्यपार) जो गए ?

नौकर- बोले न-न, कबल्ले (हमेशा के लिए) हा चला गए।

साहणी- ओ मरा गए ओ साह जी ?

नोकर- हां जी हां।

साहणी- (रोते चिल्लाते हुए) ओ मेरे ओ साहा। ओ मेरेआ साहा मरा गया।

नौकर- ता हुँण क्या किता जाए साहणिए ?

साहणी- घरा जाई आ तू। देखी आओ, पता-सता करा आओ। दवार-पार बंद करा लैणे ता तेबे आओ बोले तू।

(नौकर साह के पास पहंचता है और रोने लगता है।)

साह- ओ मुआ नोकरा ! क्या हुआ तिज्जो ? क्या हुआ ?

नौकर- ओ महाराज साह जी। क्या बोलणा। साहणी हा मरा गई।

साह- (रो कर) हाय ओ मेरिये साहणिए। केथी जो गई तू ? ओ मेरिए साहणिए। मेरा मावे। ए ता बुरा काम हुआ।

नौकर- साह जी। ए ता बुरा काम हा, एभे क्या किता जाए ?

साह- आसे चलिए तेथी जो। हांऊ ता जाई आऊं सौहरे रे घरा।

(साह-साहणी एक-दूसरे के जिवित देखकर ख़ुश होते है)

साह- (साहणी से) तिने बहनचोदे ज़रुर झूट गलाया।

साह-साहणी- का ओ नोकरा । त झूठ गलाई दिता।

नौकर- ता महाराज। तुसे मुंजो ध्याड़ा पांज जुते नी बाहंदे। ता म साला अंदर एक बारा झूठ गलाया।

उपरोक्त दोनां बांठड़े (स्वांग) मंडयाला बोला म ह।

आज के समय म भी लोक-नाट्य का एक हास्य-व्यंग्य प्रधान शैला के रूप म "बांठड़ा" महत्वपूण है। इस शैला को आधार बनाकर नुक्कड़ नाटकां को असरदार बनाया जा सकता है। हाल हा म चलाये गए साक्षरता अभियान के दौरान लोगां का बोला म साक्षरता का संदेश जन-जन तक पहुंचाने के लिए "बांठड़ा" के "स्वांगां" का सहारा लिया गया। इससे साबित होता है कि "बांठड़ा" एक नाट्य शैला के रूप म सुदूर अतीत से लेकर वतमान तक प्रासंगिक बना हुआ है।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों म "करियाला, हरण, भगत" आदि अनेक लोक-नाट्य प्रचलित है। इसम शिमला, सोलन तथा सिरमौर के क्षोत्रों म प्रचलित "करियाला" भी हास्य-व्यंग्य प्रधान लोक-नाट्य है। "करियाला" म भी साधु का स्वांग, साहब-मेम का "स्वांग" आदि होते है, जो "बांठड़ा" से काफा हद तक मेल खाते ह, लेकिन शाशक का त्रुतियां को उसने सामने निभिकता से उजागर करने का जो परम्परा खुद शाशक ने शुरु का इस दृष्टि से "बांठड़ा" का अपना अलग महत्व है। आज मनोरंजन के अनेक साधन घर के भीतर हा मौजूद रहने के कारण लोक म प्रचलित इस तरह का निष्पादन विधाएं विलुप्त होती जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्य “करियाला, भगत और बांठड़ा” का तुलनात्मक अध्ययन

भूमिका:-

यूं तो हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक जिले म कोई न कोई लोक नाट्य, लोक नृत्य पाया जाता है किन्तु मुख्य रुप से हिमाचल म “करियाला”, “भगत” और “बांठड़ा” विशेष रुप से विख्यात अपने अपने समय म रहा ह। उसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों म लोक नृत्य की परम्परा रही ह क्योंकि हिमाचल प्रदेश का क्षेत्र काफ़ी विस्तृत है कहीं पर वह मैदानी इलाके जैसा है तो कहीं वह पहाड़ी रेगिस्तान जैसा, वातावरण के अनुसार यहां की सभी कलांए परिचालित होती रही ह। कही मैदानी इलाकों जैसी गर्मी है तो कहीं ख़ून को जमा देने वाली ठंड। यह सर्दी- गर्मी, स्थान तथा जलवायु के अनुसार हमारे गति संचालन को निधारित करता रहा है।

मुख्य रुप से हिमाचल प्रदेश म शिमला और सिरमौर का ‘करियाला’, मण्डी का ‘बांठड़ा’ और कांगडा का ‘भगत’ लोक नाट्य प्रचलित रहा है। जिसम ‘करियाला’ और ‘बांठड़ा’ तो मूल रुप से हिनाचल प्रदेश की भूमि की ही उपज है किन्तु जहां तक ‘भगत’ का सवाल है यह लोक नाट्य उत्तर प्रदेश के ब्रज भूमि से वहां पर गया है।

इसम हम इन सभी लोक नाट्य विधाओं के आलेख, वेश विन्यास, अभिनय, गीत, लोक वद्धय यंत्र, मुख सज्जा, कथानक तथा इन लोक नाट्य विदधाओं के जन्म का तुलनात्मक अध्ययन कर

इनके प्रयोगिक स्वरुप को आज के संदभ म आपके सम्मुख रखने का कोशिश करग।

\

करियाला का उत्पत्ति काल-

"करियाला" म सर्वप्रथम साधु का स्वांग जिसके तहत आध्यात्मवाद, दशन और योग का परिचय कराया जाता है, संभवत: इस नाट्य का प्राचीनतम् सूत्र है। मनोरंजन के साथ-साथ आध्यात्म, तप, त्याग, जीवन म सिनटा पाखंडता, मोह और अज्ञानता के उन्मूलन का उद्देश्य भी इस लोकमंच म छिपा है। गेरुवा वेशधारियां का जमात म छिपे सच्चे और झूठे मनुष्य का पहचान करने का शिक्षा भी इस नाट्य म मिलती है। अत: 'करियाले' पर जोगियां और वाममार्गियां का यह प्रभाव इस तथ्य का पुष्टि करता है कि 11 वीं शताब्दा के आस पास यह लोक नाट्य किसी न किसी रुप म उदित हो चुका था। 13 वीं और 14 वीं शताब्दा के बीच इस भू-भाग म नाथां के आगमन तथा वास से इसके रुप पर थोड़ा बदलाव आया।

नाथां तथा सिद्धों से तात्कालिक लोकवाता इस कदर प्रभावित थी कि लोकधर्मा स्वांग योगियां के चमत्कारां तथा वाममार्गा प्रवृतियां से अछूते नहां रह सके। 'कबीर' और 'जायसी' के ग्रंथां म उपलब्ध स्वांग उल्लेखां से प्रमाणित होता है कि 14 वीं शताब्दा के उत्तराध म या 15 वीं शताब्दा के प्रारम्भ म स्वांगां के प्रदशन जनरुचि को अपनी ओर आकर्षित करने म पूरा तरह सफ़ल हो गये थे और तात्कालिक स्वांगां के प्रदशक- सूत्रधार, बाज़ीगर, नट आदि व्यवसायिक लोक-

कलाकार थे। 'स्वांग' आदि खेल तमाशे का प्रदशन नट करते थे और दूसरे व्यक्ति उनम भाग नहां लेते थे।

अत: उपरोक्त उल्लेखां एवं 'करियाला' लोक नाट्य का लोकधर्मा परम्पराओं के तलस्पर्शा अध्ययन से यहा निष्कष निकलता है कि 'करियाला' का लोकधर्मा नाट्य परम्परा का उद्भव इस प्रदेश म नाथां के आगमन 13 वीं 14 वीं शताब्दा से पूव हो चुका था और इस नाट्य का प्रदशन निम्न पेशेवर कलाकारां द्वारा जनसाधारण के मनोरंजनार्थ किया जाता था। नाथां और सिद्धां के देशव्यापी प्रभाव से जन साधारण का स्वांग परम्परा म योगियां के चमत्कारां तथा वाममार्गा प्रवृतियां का समावेश हुआ। नाथां और सिद्धां के प्रभाव-स्वरुप जन जातिगत बंधन शिथिल हुए, वाममार्गा प्रवृतियां से लोक का मोह भंग हुआ तो जनसाधारण ने इस सशक्त माध्यम, लोकमंच का बागडोर अपने हाथां म लेकर युगानुरुप इसका विकास किया।

'करियाला' का लोकमंच परम्परा का सूत्रपात 11 वीं12 वीं शताब्दा के आस-पास हास्य-परिहास नाट्य के किसी न किसी रुप म हो चुका था। 13 वीं 14 वीं शताब्दा म इसके लोकरंजन एवं जनप्रिय स्वांग नाट्य का स्वरुप प्राप्त किया तभी से साधु का स्वांग इसम जुड़ा।

'करियाला' के अभिनेता 'करयालची' कहलाते ह। 'करियाला' म स्टॉक चरित्रां का परम्परा रहा है। 'करियाला' का सूत्रधार 'करयालटू' कहलाता है। 'करियाला' का कोई लिखित आलेख नहां होता है और न हा कथोपकथन हा पूव नियोजित होते है। वे अधिकांश म तात्कालिक उपज तथा रंग-स्थला म स्थिति विशेष का प्रेरणा पर निभर रहते है। अत: 'करियालची' का वाकपटुता पर 'करियाला' का सफ़लता निभर रहती है।

'करयालची' जो भी विषय लेते है बड़ी प्रवीणता एवं चातुय से उसका अभिव्यक्ति करते है । 'करियालटू' का कमाल भी देखने लायक होता है, बिना किसी लिखित आलेख के, मात्र अपने जीवनानुभवां के सहारे वह सभी विषयां का स्वाभाविक कथन और निदशन सुगमता से करता चला जाता है। उसके पास सभी समस्याओं का तात्कालिक हल होता है और उसका धम और संकल्प रहता है 'करियाले' का निवाहन सफ़लता।

'करियाले' के संवाद प्राय: पद्यात्मक, तुकान्त और लोकधुनां पर आधृत होने से श्रोताओं को सीधे प्रभावित करते है। 'करियालची' दशकां का रुचि और मन स्थिति के अनुरुप नए-नए, मनमाने संवाद गढ़ते हुए कथानकां म मौलिक उदभावनाएं करने म सिद्धहस्त होते है । 'करियाला' का मूल भाषा स्थानिय रंग लिए हुए पहाड़ी हा होती है, परन्तु 'करियालची' विषयानुसार संस्कृत, पंजाबी, हिन्दा, उदू तथा देशी अंग्रेजी भाषाओं के शब्दां-वाक्यां का प्रयोग करके अतिरिक्त परिहास जुटाने के क्रम म उसे खिचड़ी रुप दे देते है। 'करियाले' का सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी भाषा म प्रश्नोतर संवादां का चुस्ती, फटाफट अभिव्यक्ति से उत्पन्न हास्य दशकां को हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देता है ।

'करियाला' म लोकरुची के विभिन्न कथानकां को छोटे-छोटे प्रहसनां, झलकियां आदि को हास्य- व्यंग्य का परिहासपूण शैला म खेला जाता है। साधुओं का कुचेष्टाय तथा अनैतिकताएँ छुआछुत का विभिषिका, दहेज प्रथा का निममता, परिवार नियोजन का साथकता खेती-बाड़ी म वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आवश्यकता, शिक्षा का उपदेशता जैसे सभी विषयां से संबधिता स्वांगाभिनय 'करियाला' म होता है। साथ हा उसका समाधान भी सुझाया जाता है। 'करियाला' का व्यंग्य

स्वस्थ भी होता है और विदुष- कटाक्ष से परिपूर्ण भी। श्रृंगारिक प्रसंगों म व्यक्त कटाक्ष कभी-कभी अश्लीलता के निम्नस्तर तक पहुँचकर अधिकांश को हँसाता है तो कुछेक को कटोटता भी।

लाड़ा-लाड़ी, नट-नटणी, साहब और मम, पिलपिला साहब, चना ज़ोर गम, भागी हुई लड़की, बीकानेरी मालणियां आदि 'करियाले' के नये- पुराने स्वांग है। साहब और मम म भारतीय समाज की अंग्रेजियत पर तीखा प्रहार है, तो पिलपिला साहब म नौकरशाही पर कटाक्ष और पति-पत्नी म पारिवारिक विसंगतियों पर विद्रुप व्यंग्य ।

लोक नाट्य भगत की उत्पति-

'भगत' प्रहसनात्मक स्वांग नाट्यों की लोकधर्मी परम्परा का ही एक विशिष्ट रुप है। इस नाट्य परम्परा को जन साधारण के प्रिय देवी-देवतोओं तथा उनके प्रसिद्ध भक्तों के रोचक चरित्र प्रसंगों के अभिनय का लोक मंच कह सकते ह। अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण ये नाट्य प्रकार 'भगत' कहलाया। समुचे उत्तर भारत म 'भगत' नाट्य का प्रचलन है और सभी जगह पर इसका रुप एक समान मिलता है। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा, बिलासपुर, हमीरपुर तथा ऊना म 'भगत' का प्रचलन है। यह लोकमंच आज भी झीवर, दरई, जुलाहे जैसी निम्न मध्यम वर्गीय जातियों की धरोहर के रुप म जीवित है ।

'भगत' की परम्परा बड़ी प्रचीन एंव व्यापक है। 'भगत' का सर्प्रथम उल्लेख "आईने अक़बरी" म मिलता है "आईने अक़बरी" 'भगत' कीतन के समान एक संगीत है परन्तु उसम विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा धारण कर के असाधरण स्वांग का प्रदशन किया जाता है । 'भगत' का दुसरा प्राचीनतम उल्लेख औरंगजेब के समकालिन

मौलाना गनीमत की मनबी "नैरंग इश्क" म मिलता है। इस मनसबी का रचनाकाल सन् 1685 ई0 बताया जाता है। उपर्युक्त साहित्योल्लेख से ये स्पष्ट हो जाता है कि 'भगत' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। परन्तु जिस रुप म आजकल 'भगत' प्रचलित है इस परम्परा का विकास सन् 1825 ई0 के आस-पास हुआ।

'भगत' नाट्य खेलने के लिए किसी अवधि विशेष की पाबंदी नहीं होने से पूरे वष भर इसके प्रदशन होते रहते ह। पहाड़ी क्षेत्रों म 'भगत' नाट्य मनौती पूर्ती का मांगलिक साधन माना जाता है। जिस किसी व्यक्ति की सुखणा पूरी होती है, वह वायदे अनुसार 'भगत' नाट्य मंडली को प्रदशन के लिए आमंत्रित करता है और यज्ञ, दान आदि के साथ पूरे गांव की धाम करके रात्री म भगत का खेल आयोजित करवाता है, जिसकी सुखणा पूरी होती है, वह वायदे अनुसार 'भगत' नाट्य मंडली को प्रदशन के लिए आमंत्रित करता है और यज्ञ, दान आदि के साथ पूरे गांव की धाम करके रात्री म 'भगत' का खेल आयोजित करवाता है। 'भगत' के प्रदशन प्राय: व्यवसायिक होते है, और पुरुष ही इसम अभिनय करते है।

'भगत' नाट्य प्रदशन के लिए चाहिए ऐसा खुला स्थान जहां दशक भी बैठ सक और दशकों के बीच नाट्य प्रदशन के लिए काफ़ी खुली जगह भी सुलभ हो। गांव के किसी खुले मैदान अथवा सुखणा वाले जजमान के आंगन म अलाव जला कर इसके इद-गिद नाट्य प्रदशन के लिए स्थान छोड़कर दशक बैठ जाते है। जलता हुआ अलाव रौशनी व ताप के लिए उपयोगी होता है। आंगन के पास चारपाईयाँ खड़ी करके उनको चादरों आदि से ढ़क कर 'भगतियों' के लिए मेकअप रुम बना दिया जाता है।

'भगत' के कलाकार मंच के अनुकरण पर 'भर्गातये' कहलाते है और निदशक गुरु या गुरुजी 'भर्गातये' आशुकवि, अभिनय म निपूण सूराले कंठ वाले पुरुष होते है। हर परिस्थित के अनुरुप अपने को ढाल लेने का कला म भर्गातए लाजवाब होते है। 'भगत' का बहुत कुछ सफलता उसके 'विदुषक' पर निभर करती है। उसका अभिनय, हास्य विनोद, पैरोडी करने, गालियां निकालने तथा भद्दी-भद्दी हरकतां म माहिर होना ज़रुरा होता है। 'भगत' के प्रदशन म विदुषक अपनी इन्हा विशेषताओं म हास्य और विनोद पैदा करके दशकां का मनोरंजन करता है। 'भर्गातए' अपनी रुचि और बुद्धि के अनुसार स्वांग गढते है, प्रस्तुत करते है। उसम रद्दो बदल करते है। उन्ह इस सम्बन्ध म गुरुजी का ओर से पूरा छूट रहती है। अनेकां बार 'भर्गातए' अपनी सूझ-बूझ तथा उदभावनाओं से दशकां को आश्चयचकित कर देते है। 'भर्गातए' साधारण प्रदशन पर दशकां म पूजा का थाला फिरा कर एंव दशकां से ईनाम आदि प्राप्त करके अर्थापाजन करते है। दान देने वाले दशकां के नाम लेकर भर्गातए अनेक बेल गाते है। 'भगत' मूलत: निम्न वग का अध-वैष्णवी लोक लाला मंच है, जिसपर प्राजीन भक्ति गाथाओं, कथाओं तथा भक्तां, वीरां के चरित्र को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

बांठड़ा का उत्पत्ति काल-

यह लोक नाट्य विधा हिमाचल प्रदेश के मण्डी ज़िले का है। प्रारम्भ म हिमाचल प्रदेश पंजाब का एक हिस्सा था छोटा-छोटा रियासत हुआ करती थी, मण्डी भी एक रियासत थी जोकि चारां ओर से पहाड़ां से घिरा हुई है। प्राचीन काल म इस क्षेत्र अथवा रियासत के अधीन कई छोटा-छोटा उप रियासत हुआ करती थी जिनको मण्डी के राजा के आधीन रहना पड़ता था। इस प्रकार मण्डी के राजा का काय

क्षेत्र काफी विस्तृत हुआ करता था। क्योंकि पूरा का पूरा हिमाचल पंजाब हुआ रकता था इसलिए कैसे यह संभव होता कि पंजाब की लोक संस्कृति का असर हिमाचल की लोक संस्कृति पर नहीं पड़ता आज तक हिमाचल प्रदेश की पूरी की पूरी संस्कृति पंजाब से प्रभावित है चाहे वह हमारी लोक संस्कृति म पहनावा हो, खान-पान हो, लोकरंग हो या रीति रिवाज़ हो सभी पर पंजाब की संस्कृति का प्रभाव नज़र आता है। खास कर मण्डी के इस लोक नाट्य परम्परा पर पंजाब के लोक नाट्य नकल का काफी प्रभाव रहा है।

प्रचीन काल से यह परम्परा रही है कि नाचने गाने वालों को लोग हेय की दृष्टि से देखा करते रहे ह। 'भरत मुनि' ने अपने नाट्य शास्त्र म भी इस बात का वणन किया है इस समुदाय के लोगों को बस्ती से दूर किसी अन्य स्थान पर निवास हेतु जगह उपलब्ध करायी जाती रही है, उसी प्रकार इस लोक नाट्य विधा से जुड़े सभी कलाकारों को शहर के किसी अलग हिस्से म रहने के लिए वाध्य किया गया जोकि बाद म एक परम्परा के रुप म विकसित हो गई इस परम्परा का निवाह आज भी किसी न किसी रुप से किया जा रहा है।

प्रचील काल म राजा के पास इतना समय नहीं होता था कि वह लगातार अपनी जनता के साथ हर समय जुड़ा रह सके। जो भी नय कानून या नियम हुआ करते थे वे अपन मंत्रियों के माध्यम से जनता तक पहुंचाये जाते थे तथा उनको शहर कोतवाल के माध्यम से लागू किये जाते थे यह नियम या कानून समय समय पर बदलते रहते थे। कुछ नियम या कानून ऐसे भी होते थे जिसम आम जनता दुखी व परेशान हो जाया करती थी किन्तु राजा तक सीधी पहुंच न होने तक वे अपना विरोध या आक्रोश प्रदर्शित भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि नगर कोतवाल का आतंक उन पर छाया रहता था। हिमाचल प्रदेश के

प्रत्येक रियासतों के राजा विशेष आयोजनों के मौके पर जनता के सम्मुख आया करते थे यह आयोजन धार्मिक आयोजन हुआ करते थे पूरा का पूरा हिमाचल धार्मिकता से ओत प्रोत तब भी था और आज भी है, इसीलिए हिमाचल प्रदेश को देव भूमि कहा गया इन आयोजनों के अवसर पर जब राजा अपने पूरे दरबार के साथ धार्मिक उत्सवों म शामिल होने हेतू अपने महल से निकल कर जन मानस के बीच म होते थे विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कायक्रमों का आयोजन राजा के मनोरंजन हेतु किए जाते थे उसी श्रृंखला म यह लोक नाट्य का जन्म हुआ होगा। "बांठड़ा" लोकनाट्य के नाम तथा जन्म से सम्बंधित एक अनुश्रुति लोक म प्रचलित है । ऐसा कहा जाता है कि राजा "वीरसेन" के शाशन काल म सुकेत राज्य म निरक्षरता का बोलबाला था। इससे राजा बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपनी प्रजा को अल्प समय म शिक्षित करने का आदेश जारी किया। तब राजा के दरबारी गायक "नगेन्द्र" ने संगीत-गायक के माध्यम से अल्पकाल म जनता को शिक्षित करने का बीड़ा उठाया। राजा "वीरसेन" का हुक्मनामा "बांथरा" था अथात् संगीत-गायक द्वारा नैतिक शिक्षा देना। "बांथरा" नामक नई शिक्षा विधि के लिए एक थड़े अथवा मंच की स्थापना हुई जहां से लोगों को संगीत-गायन की मधुरवाणी म नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा पद्धति (बांठड़ा) और उसके प्रचार-प्रसार स्थल (थड़ा) को जोड़कर लोगों न "बांठड़ा" शब्द गढ़ लिया।

कुछ विद्वानों ने "बांठड़ा" का सम्बध स्थानिय शब्द "बांठण" से जोड़ा है। "बांठण" का अथ सुन्दर या सुन्दर युवती है। सुकेत के राजा ने संगीतज्ञ और राज गायक "नरेन्द्र" को इस काम के लिए नियुक्त किया। उसे यह आदेश दिया गया कि वह लोगों के बीच जाकर मौखिक रुप से शिक्षा का प्रचार कर उन्ह जागरुक कर।

"नगेन्द्र" ने राजा के आदेश का पालन करते हुए संगीत और गायन के माध्यम से शिक्षा का प्रचार किया। वह गांव-गांव म जाकर एक थड़े यानी बैठने के ऊंचे स्थान पर बैठकर गीत गाते तथा उपदेश सुनाकर लोगों को शिक्षा देते थे। इस प्रथा को राजा ने "बाणथड़ा" (वाणीथड़ा) का नाम दिया। थड़ा जहां से लोगों को वाणी सुनाई जाए। बाद म यही "बाणथड़ा" शब्द "बांठड़ा" बना। "बांठड़ा" शब्द की यह व्युत्पत्ति सुकेत म मंडी से भिन्न है। इसी संदभ से जुड़ने वाली एक रोचक जनश्रुति भी प्रसिद्ध है। कहते है कि सुकेत के एक राजा के मुंह पर बड़ा-सा फोड़ा हो गया था। दद के कारण वह उस पर चीरा नहीं लगाने दे रहा था। राजा ने अपने राज्य म ऐलान कर दिया था कि जो व्यक्ति बिना चीरा लगाए ही इस जार अथात फोड़े को ठीक कर देगा उसे राजकोष से ढेर सारा ईनाम दिया जाएगा। राजा के इस फरमान के बाद बड़े-बड़े हकीम व वैद्य भयभीत हो गए। मगर रियासत का ही एक मस्तमौला आदमी राजा के इस फरमान को सुनकर उसका ईलाज करने को राजी हो गया। निसंदेह हास्य अभिनय के अथ म वह मशहूर बांठ था, जिसे अपनी हास्य कला के माध्यम से राजा के मुंह का फोड़ा फोड़ डालने का भरोसा था। वह राजा के सामने बैठकर कई तरह के हास-परिहास करने लगा। राजा भी उसकी बातों को सुनकर उन्मुक्त भाव से ठहाके लगाने लगा। और अनवरत ठहाकों के दौर म राजा के मुंह का फोड़ा फट गया और उसम जमा मवाद बाहर निकल पड़ा। इस तरह हंसी-हंसी म ही उसने राजा के फोड़े का इलाज बिना कोई चीरा लगाए ही कर दिया। राजा ने ख़ुश होकर उसे पुरस्कार दिया। कहते ह कि तभी से "बांठड़ा" की यह परम्परा सुकेत रियासत म पूरे जोर से चल पड़ी। श्री रुल्दू राम के अनुसार "बांठड़ा" दो अलग-अलग शब्दो से बना है। पहला

'बांण' अथात 'बनना' और दुसरा 'थड़ा' अथात 'मंच' । उनके अनुसार मंच पर कुछ बनना (चरित्र) हा "बांठड़ा" है।

"बांठड़ा" लोकनाट्य का प्राचीन स्वरुप निस्संदेह वतमान का अपेक्षा अधिक कलात्मक और व्यापक रहा होगा। कुछ वष पहले करसोग निवासी "श्री ज्वाला प्रकाश कौशल्या" को पुरोहित "परसुराम" के घर से किसी गुमनाम लेखक का हस्तलिखित ग्रंथ "बांठड़ा-नाट" प्राप्त हुआ था। "श्री कौशल्या" जी का कहना है कि हस्तलेख का एक पंक्ति से या लगता है कि यह आलेख संवत् 1628 म लिखा गया है- "(सौ सोल्हा आठ एक बीसी, मगड़े बारा लिखित मनीसी)," अथात 12 माघ 1628 (सन् 1571) को मनीसी ने लिखा। मनीसी से अभिप्राय मनीषी भी हो सकता है और यह लेखक का नाम भी हो सकता है।

यह समय राजा "वीरसेन" के समय से बहुत बाद का है, जिसके बारे म पूर्वाक्त अनुश्रुति साक्षी है कि उसके समय से "बांठड़ा" आरम्भ हुआ है। मण्डी और सुकेत रियासतो के इतिहास से प्रतीत होता है कि "वीरसेन" राजा "रुपसेन" का पुत्र था। संवत् 1259 के लगभग "सूरसेन" का मृत्यु पर उसके पुत्र "रुपसेन" ने मुसलमानां को भगा कर रुपनगर (वतमान रोपड़) म रहना आरम्भ किया और दूसरे हा वष मुसलमानां के साथ युद्ध म मारे जाने पर उसके तीन पुत्र रोपड़ से पहाड़ां का ओर भागे तथा "गिरिसेन" ने क्यांथल, "हमीरसेन" ने किश्तवाड़ और "वीरसेन" ने सुकेत राज्यां का स्थापना का। "वीरसेन" का समय संवत् 1268-1303 के लगभग रहा है।

लगता है कि "बांठड़ा" संवत् 1268-1303 से आरम्भ होकर संवत् 1628 तक अपने पूरे यौवन पर था तथा इस तरह "बांठड़ा-नाट" हस्तलेख के लेखक का विवरण उस समय के "बांठड़ा" खेल का

वास्तविक रुप है। यह उल्लेखनीय है कि लेखक “श्री ज्वाला प्रकाश कौशल्या” करसोग के रहने वाले ह और उनके अनुसार हस्तलेख पुरोहित “परसुराम” के घर से प्राप्त हुआ है। करसोग, सुकेत और मण्डी एक हा क्षेत्र म पास-पास स्थित है। अतः इस ग्रंथ का मौलिकता और खेल के स्वरुप का वास्विकता पर सन्देह करने के अधिक कारण नहा ह, यद्धपि इस विषय म निश्चित धारणा तब अपनाई जा सकती है जब उक्त हस्तलेख प्रकाशित होकर पाठका को उपलब्ध हो जाता है।

उत्पात के सम्बध म समानता एंव भिन्नता -

एक मत के अनुसार “करियाला” और “बांठड़ा” का उत्पात राजाओं के महला से हुई लेकिन “भगत” का उत्पात राजा के महल के नहा हुई। “बांठड़ा” और “करियाला” का मुख्य उद्देशय मनोरंजन था लेकिन “भगत” एक धार्मिक अनुष्ठान था जो बाद म मनोरंजन के रुप म भी विकसित होने लगा।

“करियाला” का उत्पात काल 11 वीं शताब्दा के आस-पास था जबका “बांठड़ा” का उत्पात काल 12 वीं शताब्दा के आस-पास था और “भगत” लगभग 16 वीं शताब्दा के कुछ उल्लेख मिलत ह अत: इन तीनो लोक नाट्य परम्पराओं म “करियाला” सबसे प्राचीन लोक नाट्य विधा है। विश्वास के साथ तो नहा कह सकते लेकिन लगता है कि “करियाला” का प्रभाव “बांठड़ा” लोक नाट्य पर बहुत गहरा है, यह भी हो सकता है कि “करियाला” से हा “बांठड़ा” लोक नाट्य का उत्पात हुई हो।

प्रस्तुतिकरण -

कारियाला प्रस्तुति-

"करियाला" की नाट्य प्रस्तुति का प्रारंभ "करियाला" ताल के साथ होता है। इससे तुरंत पहले जगताल होता है।" करियाला ताल" और "जगताल" लगभग पांच से दस मिनट का होता है। इसे "करियाला' का "पूवरंग" भी कह सकते ह |

चंद्रावली नृत्य

"चंद्रावली" एक स्त्री चरित्र है जो एक विशेष रिवाज़ के साथ अखाड़े म प्रवेश करती है । "चंद्रावली," नृत्य के साथ अखाड़े म प्रवेश करती है । इस नृत्य को "चंद्रावली" नृत्य कहते ह "चंद्रावली" का चरित्र पुरुष कलाकार ही करता है । यह एक टोपी पहने हुए होता है इसलिये इसे टोपीवाला भी कहते ह । कलाकार नीचे झुक कर अपने दाएं हाथ से धरती को स्पश करता है और अपने माथे पर लगाता है । यह "चंद्रावली" नृत्य दस से पंद्रह मिनट तक चलता है । "चंद्रावली" नृत्य के बाद "स्वांग' शुरु होते है ।

स्वांग

सारे "स्वांग" सिलसिलेवार शुरु होते ह । "चंद्रावली" नृत्य के तुरंत बाद वैरागी-सन्यासी का स्वांग शुरु होता है । "करियाला" म बहुत सारे "स्वांग" ह। यह नहीं है कि सारे "स्वांग" प्रदशित हो । यह

"स्वांग" समय, दशकों और कलाकारों पर निभर करता है की एक रात मे कितने "स्वांग" प्रदशित करे। कुछ पारंपरिक "स्वांग" निम्नलिखित ह :-

1. वैरागी-सन्यासी का स्वांग-
2. झुलना
3. साहब का स्वांग
4. ताऊ-ताई का स्वांग
5. गंगी-सुंदर का स्वांग
6. लम्बरदार का स्वांग
7. जुलाह-जुलाहिन का स्वांग
8. साहुकार का स्वांग
9. चमार-चमारिन का स्वांग
10. जोगी-जोगिन का स्वांग
11. राजपूत का स्वांग
12. ब्राह्मण का स्वांग
13. बंगाले का स्वांग
14. गुड्डा-गुड्डीन का स्वांग
15. ऊंट का स्वांग
16. कुली का स्वांग
17. बादल का स्वांग
18. नट-नटी का स्वांग
19. खबर

उदाहरण के लिए ये स्वांग प्रस्तुत है-

बैरागी- सन्यासी का स्वांग-

बैरागी और संन्यासी साधुओं का दो अलग-अलग श्रेणियां है | ये "स्वांग" इन्हां से सम्बंधित है | "कारियाला ताल" एवं 'चन्द्रावला नृत्य" के तुरन्त बाद यह एक आलाप से शुरु होता है | बैरागी अखाड़े के बाहर दर्शकां के सामन खड़े हो जात ह | जिसे संस्कृत नाट्यां म नेपथ्य कहा जाता है | समय बितने के साथ-साथ एक "करयालची' बैरागियां का झुण्ड के सामन, दर्शकां का तरफ मुंह करके खड़ा हो जाता है | ये "कारियालची" एक कंम्बल को अपने कन्धां पर रखकर दोनां हाथां से पकड़े होता है, जो एक पद के रुप म कार्य करता है | फिर आलाप के बाद स्वतंत्र शैला म एक दोहा गाना शुरु कर देता है, जो इस तरह से होता है-

"आद तेरा बौहरा रो गौरा पुत्र गणश
पं............पंच देव रक्षा कर
जो ब्रह्मां, बिश्णु, महेश |"

एक और भक्ति रस का दोहा गाया जाता है-

"आ.........
राम नारायण तुम बड़े, तुम से बड़ा न कोई |
भक्ति करो श्री राम का, जो पार उतारा होई |"

तब कुछ बैरागी हरे राम, हरे राम का शोर करत ह | उसके बाद बैरागी कदम-दर-कदम लयबद्ध नृत्य के साथ एक लाइन म अखाड़े म प्रवेश करत ह | उसके बाद उन सभी वस्तुओ को छूत ह, जिन्ह "चन्द्रावला" न छुआ होता है, ये उन्ह दाहिन हाथ के साथ माथे पर संपर्क करत ह | उसके बाद अखाड़े के भीतर गोल घेरे म घुमत ह, फिर सभी एक झुण्ड म पैरां के बल धरती पर बैठ जात ह| कुछ

बैरागी चिलम पीने का अभिनय करत ह | नेपथ्य से अखाड़े म प्रवेश करते समय बैरागी ढोल का ताल और एक दोहे के साथ लयबद्ध नृत्य करते हुए प्रवेश करत है-

“जोगी का नगरिया बसे भी न कोई रामा
जो भी बसे सो साधु होए”

जोगी साधुओं का एक अन्य वग है, दोहे के बाद बैरागी हरे राम-हरे राम का शोर मचात ह, जिससे पुरा माहौल बदल जाता है | एक बैरागी समुह से अलग धरती पर बैठ जाता है, जो गुरु होता है, उसके हाथ म मोरपंख का झाड़ू होता है जिसे “मुड्डा” कहते ह | झुण्ड म से एक बैरागी आता है जिसका नाम “पुरबिया” होता है उसका एक और नाम है “मज़ाकिया” |

“मज़ाकिया” गुरु के साथ बात करना शुरु करता है और चारां ओर घुमता रहता है और समुह के सदस्यां के साथ, गुरु द्वारा बोला जाने वाला आध्यात्मिक बातां को दशकां के सामने दोहरे अर्था म पेश करता है | गुरु उससे कहता है कि अगर तुम कुछ पुछना चाहते हो तो पुछो, “मज़ाकिया” दोहरे अर्था म संवाद बोलता है | एक तरह ये दशकां के लिए मनोरंजन का स्रोत बन जाता है |

अंत म गुरु कहता है कि उसे तीन चीज़े चाहिये, पहला शुद्ध ज़मीन, दुसरा शुद्ध पानी और तीसरा एक सुनसान जगह बैठने के लिए | उसके बाद मज़ाकिया अखाड़े म गोल चक्कर लगाता है और दृश्य परिवतन करते हुए एक गांव म प्रवेश करता है | एक अन्य चरित्र बाबू का प्रवेश होता है, मज़ाकिया इससे बात करता है और गुरु का तरह उससे तीन चीज़े मांगता है | लेकिन मज़ाकिया चीज़े का जगह

जीजे कहता है जो हसीं का कारण बनता है | सन्यासी मज़ाकिया से उसके उच्च ज्ञान की परिक्षा लेता है, जैसे-

“कहां से तुम जोगी आए
कहां तुम्हारा भाव
कहां बहन, भतीजी
कहा धरोगे पांव”

तब मज़ाकिया स्थानिय बोली म कहता है कि “फसी गयो” लेकिन वो जबाव दे देता है-

“दक्षिण से जोगी आए
उत्तर हमारा भाव
धरती हमारी बहन- भतीजी
यहां धरग पांव”

सवाल का जवाब देने के बाद मज़ाकिया ये संवाद बोलता है-

“पीओ री खिचड़ी खाओ
मेरे भाइया सैला जागण जाओ
और सारा दिन कुनिहार बैठी के
बामणां रा छोरु गाओ”

जिस लय म सवाल किया जाता है उसी लय म उसका जवाब भी दिया जाता है | मनोरंजन के साथ-साथ दशकों को भारतीय पौराणिक कथाओं और भारतीय दशन का ज्ञान भी प्राप्त होता है |

सवाल-जवाब के बीच-बीच म मज़ािकया मज़ाक करता रहता है, स्वांग का अन्त नाटी या गान के साथ होता है ।

"स्वांग" एक तरह की "नकल है" । "जो कारियालची" अपने ढ़ंग से करते ह । वह लोग अपने आस-पास और अपनी रोज़मरा की जिंदगी के चरित्र चुनते ह । प्रस्तुित को मनोरंजक बनाने के लिये "कारियालची" वहां की समाजिक, आर्थिक और वहां की समसामायिक परेशािनयां को अपनी प्रस्तुितयां म पिरोते ह । "स्वांग" मुख्यत: हास्य रस म ही होते ह । प्राय: संवाद स्थानीय बोली म बोले जाते ह । "कारियालची", जो इन स्वांगों म भाग लेते ह, उन्हे "स्वांगी" कहा जाता है| आज कल "कारियाला" लुप्त मात्र है । कुछ कलाकारों ने कुछ और स्वांग भी बना दिय ह, इनम टेलीिवज़न और फिल्मों का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है । "चंद्रावली नृत्य" एक पारंपिरक नृत्य है इसिलये वह अभी भी प्रदिशत किया जाता है । चंद्रावली नृत्य के तुरंत बाद वैरागी-सन्यासी का स्वांग होता है।

<u>भगत की प्रस्तुित:-</u>

"भगत" की शुरुआत भगितयों के आन तथा उनका आदर- सत्कार व धियाना लगाने से होती है | बाद म यजमान से आटा मंगवा कर पूजा-पाठ किया जाता है और तबले पर थाप देकर, जिसे 'छेड़' करनी कहा जाता है, सवप्रथम अग्नि की पूजा की जाती है| "भगितयों" को खाना खिलाने से पहले नौ पतलों म 'जग' (धाम) का खाना और दसव पतल म कच्चा 'कोरा' (अन्न) रखवाया जाता है, जिसे- 'दसूंह' कहा

जाता है । धूप-दीप से पूजा करके कच्चा कोरा व 'अरदास' उठाई जाती है फिर खाना खिलाया जाता है| अरदास उठाने का अधिकार सिर्फ हरिजन भगतिए को ही होता है, विशेष रुप से पांडव लगाने की सुक्खणा तो केवल यही उठा सकता है और कोई नहीं| इसके पिछे भी पांडवों का आशिर्वाद माना जाता है क्योंकि किसी रसोईए ने पांडवों के खाने में ज़हर मिला दिया था, परन्तु इसकी सूचना हरिजन ने पांडवों को दे दी थी और सभी बच गए थे| इसी कारण पांडवों ने उन्हें आशिर्वाद दिया था कि भविष्य में हमारी सुक्खणा को केवल तुम्हीं उठाओगे|

अरदास एवं सुक्खणा उठाने तथा खाना खाने के बाद शुरु होता है- पूर्व रंग, जिसमें 'डौरु' के साथ-साथ अन्य ताल-वाद्य बजाए जाते हैं और इस अन्तराल के मध्य भगतिए अपनी-अपनी वेशभूषा व बनाव-श्रृंगार में जुट जाते हैं। इसी बीच फरमाइश के गाने होते हैं, मुजरा-बेल होती है और मनसुखा-सखी का नृत्य होता है । इसके उपरान्त होती है, राग 'कोहदड़ा' में गणपति गणेश वन्दना। गणेश की स्तुति के बाद होती है- कृष्ण लीला, जिसमें एक भगतिया श्रीकृष्ण तो बाकी सखियों के रुप में बन संवर कर रास लीला रचाते हैं। "□□□□□" □□□□ □□ □□□ का सखा और सभी मिलकर कृष्ण लीला में विभिन्न लीलाएं, माखन □□□, □□□-मुन्दरी लीला आदि खेली जाती हैं। □□□-□□□ □ मनसुखा श्रीकृष्ण के प्रश्नों के उटपटांग उत्तर देकर सभी को आनन्द □□□□ □ □□□□ □□ □□□ □□

"□□□□□" □□ □□□□□ "□□□" □ □□□□□□□ □□□□ □□ □□ □□□□ मुख्य सखी या नर्तकी को विभिन्न सम्बोधनों से सम्बोधित करता हुआ प्रेमालाप करने का प्रयास करता है, वहां वह केवल श्रीकृष्ण के प्रति ही विनीत भाव रखता है, बाकी सभी "□□□□□" विभिन्न पात्रों

□□□□ □□□ि □□ □□ □□□□□□□□□□ □□□□□□□□□□ □□ □□□ □□
□□ □□ □□□ □□□ि □□□ □□ि□□□□□□ □□□□ □ण□□□□ □□□□□□□ □□□
□□□□ □-

"ि□क□□□ □□□□□□,
□□□□ग□□ □□-----□□----
□ब□□□□□ □क□ □□□□ □□□□|"

□□□ प्र□□□ □□□□ □ि□□□ □□□ □□□ □□□□ □-

"□□ □□□□□□-□□□□, □□ □ब□□-□□|
अद्ध सेर लड्डू खांदा, होर पीन्दा भंग|"

"□□□" □□ '□□□□□' जहां बन्दरां का तरह उछलकूद करता हुआ □□□ि□□ि □□□□ □□□ि□ि □□□□-साथ किसी दशक का गोदा म या कन्धां तक बैठ जाता है, वहां वह अपनी प्रिय सखी को विभिन्न सम्बोधनां से इस प्रकार पुकारता है कि सभी लोग हैरान-□□□□□ □□ □□□□□। □□ □□□-□□□ □□, □ि□□ ि□□ि□लिए, लसर्पासिए, □□ि□ रसभरिए आदि नामां पुकारने के अतिरिक्त नृत्य करते समय गाने के □□□ □□□न्□ □- '□□□ि □□...... □ि □म्□□ □□□ □□□□ □□□ □ि □□□□□न्□ □□□ □□ □□□ □□□ □□□-□□□□□□ □□□ ि□□□□ □□ '□□□□□' □□ '□□□□□' □□ □ि□□□ '□त्र□□□' □□रु□ □ □□□ □□त्रों का □ि□□□ □□ □□□ □□□□ □□

"□□□" म सुआंगो का काव्यमयी भाषा के बीच म '□□□□□' □□ 'श्री□ष□' का दोस्ती और कुशलक्षेम के संवाद हास्यरस का उत्पति □□□□□। अबोध बना मनसुखा श्रीकृष्ण के कथनां का उल्टा ही अथ

□□□□□ □□□□□□ □□□ □□□ □,□□□□□□'□□□' □ा □□□□□□ स्□ष□ रु□ □□□□□□□ □□ □□ □□ □□□ □□□□ □ □□□□□□□- □□□□□ □□ □□□□□□□ □ष□ □□□□□-

श्□ □ष□- □....... □□| □□□□□.......

□□□□□- (पीछा से) मेरा मन कुन्हा पुच्छया ?

श्□□ष□- (□□□□□□ □□) □□□□□ □□□ □□....

□□□□□- □□ □□□□ □□ □□□ □□........

श्□□ष□- □ □□□□ □□□□....

□□□□□- □□, □ □□ □□ □□न्□□। म छड्डी दिातियो।

श्□ □ष□- क□□....... □□...... □□न्□□......

□□□□□- □□, □□□□।

श्□□ष□- म लौरा भेजां।

□□□□□- □□, □□ □□, □□ □□ □□□□

श्□□ष□- □□□□□□, □□ ?

□□□□□- जी, हुण म जब्बरा (बुड्ढा) होई गिया।

श्□□ष□- □□□ ?.......

□□□□□- □□ □□□□.......

इस प्रकार के संवादा से और अथ लगाने के कारण सभी दशक भरपूर आन्नद उठाते ह। □□□-भाले स्वरुप म मनसुखा बाता हा बाता म □□□□ □□-

"□ल्□□□ □□ □□ □□□ □□, □ि□□□□ □□ □□□□ □□ □□□"
□□-संत साखियां जमना किनारे को पंज-सत सट्टियां (जूतियां का)
□ब□□□ (□□□-नुरपुर के पास का खड्ड) के किनारे,

जमना घाट पर पैहरा दिंगा को जमना (स्त्री विशेष का नाम)
दे घराट म नी दिन्दा पैहरा, रोटा- पाणी फ्री को रोटियां पर घी,”
□ि□-आदि कहकर स्वंय भी ज़ोर से हंसता है और सुनने वालों के पेट
□ □□ □□□-□□□□□ □□ □□□□।

□□ □□□□□□ □ष□ □□□□□ □□□ □□ ि□□□□ □□□□ □□ □□□□ □□□, □□□□, □□□□, □□□ □□□□ □□□□ □□ उसके हाथ म मुरली होती □□ □□□-चार पात्र सखियों का वेशभूषा म प्रवेश करते ह। □न्□ □ □□ □न्□□□ □□□□ □□ □□□□□□□, □□□□, □ि□□,□□रु, □□ट्ट□, □□□ □ि□ □□□□□□□ □□ ये सभी श्रीकृष्ण के चरणों म नतमस्तक प्रणाम करके भजन गाते ह और नृत्य करते ह। □□ □□ □त्□-□□□□ □□□□□ □□□ ‘□□□□□’ □□□ □□ □□ ‘ि□□□□’ □□ □□□ □□ □□□□ □□ □□□ ‘□□’□ □□ ‘□□-□न्□□’ □□ □□□□□। □□□□□□□ □ □□ □□□□ □□□□ प्र□□: बांस का होता है जिसे एक सिरे से चीर दिया होता है ताकि जब □□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□ □□□-□□□ □ी ध्□ि □□□□ □□ □□□, □□ □□ □□□ □□ □□□□□□□□ □□ □□□□□ □□□ □□□ □□□ □□ □□त्र प्र□□: □□□, □□□□□, □□□□ □□□□ □□ उन्मुक्त हास्य प्रदान □□□□ □□□□ □□श□ □□□□ □□ श्वेत रंग का लम्बी दाढ़ी के साथ इसने □□□-□□□□□□□ □□ी □□□□-□□□□□□□□□□□□□□□□। ि□□ □□ □□□□ □□□□ □□□□ □□ श्रीकृष्ण से मिलने से पूव इसे दूसरे पात्र रास्ते म ही रोक लेते ह। □□’□□□□□’ को वापिस जाने का राय देते ह। □□न्□□□□□□□□□□ □ि□□□□□□ □□ □□□□□ ि□□□ □□□□ □□ □□ प्रकार के कष्ट सहन करके भी वह श्रीकृष्ण के दशन ि□□ ि□□□ □□□□ □□ □□□□ □□ि□□□□-

“□□□□□ □□□ □□ ?

□□□□□
क□ □□□□□ □ □□?
□□-□□□□(□□ □□) □□ि□□।
तो चूल्हे पर क्यां नहां सुखाते ?
अरे नहां, मन का शान्ति के लिए।
□□ □□□ि□□□?
□□□□ □ष□ □□□□।
□□□□□□□ □ □□?
□ □ □□ □ □ □□, □□□ □□ □□□□ □ □□
कृष्णजी दे दर्शन दा, असीं इरादा बनाए हन"

इस प्रकार नाना प्रकार का दलाल देकर अन्त म प्रवेश पा हा □□ □□ श्रीकृष्ण के पास पहुंचकर वह साष्टांग प्रणाम करता है और □□□□ □□ □□□□ □□

इसके बाद श्रीकृष्ण लाला से सम्बधित अनेक अन्य दृश्य प्रस्तुत □□□□ □। '□□□□□' □□□ □□ि□□□'श्री□ष□' □□ □□□□ □□□□ □म्□ि□□ □□□□ □□ श्री□ष□ □□□□□ □□□□□□ □□

"तू बरसाने म जा, वहां ललिता और चन्द्रावला नाम का सखियां है। उनसे कहना आज तुम्हारे बरसाने म श्रीकृष्ण गांए चराने आए है। □न्□ □□□□□□ □ा □□ □□□ □□ उनके लिए माखन मिश्री दो।"

'□□□□□' इस नौकरा को टालने का प्रयास करता है। □□□ी □□ ि□□□ □□ □ि□□□ □□ '□□□□' □□□ □न्द्र□□□ी □□ 'चन्दरा' (□□□) □□□□ □□ □ □ □□□□ □□

“□□, □□, □□। □□□□□□ □□□ □ी □□□□। □□□□□□□□□...... (□□□□ रु□□□) □□□□□□□ □□ □□ □ी □□□ □□ □□□□□ □□ □□ □न्□□ □□, □□□ी □□□ □□ □□□□□। वे तुम्ह मटका भर कर माखन दगी। □□ी तो शक्ल देख कर उन्ह उलटी आ जाएगी।”

□□□□□□ □□□ □□□□□□ श्री□ष□ □□□□□ □□□□□□□-

“सखा मनसुखा मुझे शम आती है (थोड़ा रुकक□) □□□□□□□□।”

□□ □□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□ी □□ □□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□□□ □-

“तो क्या तुमने मुझी को बेशम समझ रखा है। □ □□ □□ □□ हू तुम्हारी तरह, क्या शम करना मुझे नहीं आती।”

मनसुखा गोपियां से मिलता है तो गोपियां श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आतुर होकर कहती ह-

“माखन तुम्ह नहीं, तुम्हारे लालजी को ही मिल सकता है। □□□ □□ □□ □□, □□□□□ □□ □□□□ □□□□।”

‘□□□□□’ गोपियां को अतिशयोक्ति की भाषा बताता है कि लालजी □□□□□□□□ □□□□□ □ि□□ □□ □□□□□□□ ‘□□□□□’ श्री□ष□ □□ □□ □□□□□ □□□□□ □□ श्री कृष्ण मनसुखा से कहते ह-

“देख हम मद ह, ये औरत ह। □□□□□ □। □□□ □□□ी □□ ि□□□□□ □□□ □□□□-□□□□ □□”

श्रीकृष्ण बांसुरी बजाते ह, गोपियां सिर पर मटका रख कर वहां आ [illegible] गोपियां का मांग पर श्रीकृष्ण गीत गाते ह-

“[illegible]- [illegible],
[illegible]।”

इस गीत के पूरा होते हा गोपियां मनसुखा को वन म पत्ते लाने के [illegible] श्री[illegible] [illegible] [illegible] प्रयोजन सिद्ध करके भाग जाती ह। [illegible] श्री[illegible] [illegible]-

“[illegible]। [illegible], [illegible]।”

फिर दोनां स्त्री वेश म गोपियां से मिलने का प्र[illegible]। श्री[illegible] चन्द्रावली को अपनी सगी बहन बताते ह। चन्द्रावली के स्पष्टीकरण मांगने पर श्रीकृष्ण बताते है कि बचपन से हा अपने मामा के घर [illegible]। लेकिन बातां हा बातां म चन्द्रवली पहचान जाती है कि यह स्त्री वेश म कोई मद यानी श्रीकृष्ण है। [illegible]-

“सखी तेरी चाल मर्दा का, सखी तेरी छाती मर्दा का”

[illegible] “[illegible]” के इन दृश्यां म हिन्दी साहित्य [illegible]-कालीन साहित्य का प्रभाव प्रदशित होता है। श्री[illegible] [illegible] क्षेत्र [illegible]-[illegible]वन को निश्चित रुप से बहुत प्रभावित

ि□□□ □□ इस प्रभाव को कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों म परिलक्षित किया है। जिस प्रकार कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने चित्रों म श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बंधित घटनाओं को ख़ूब उभारा है, उसी प्रकार इस क्षेत्र के लोक- □□ट्□ "□□□" म कृष्ण की लीलाओं को अनेक तरह से प्रदशन मिला है।

□□□□□□□: "□□□" से अभिप्राय कृष्ण-□□के□ □□□म्□ि□□ □ि□त□ □□ □□□-नाट्य रुप म प्रदशन से है। □□न्□□"□□□" □ केवल श्रीकृष्ण के चरित्र का ही चित्रण मात्र नहीं रहता है, बल्कि "□□□-मण्डली" □न्□ ि□□□ □ी □ □ □□ □□□ □□□□□ □त्□□□-सावित्री, प्रहलाद भगत, राजा हरिशचन्द्र, पूण भगत, वीर अमरसिंह राठौर आदि साहित्यिक नाटकों का प्रदशन होता है। □□□□म्□□□□□ लोगों म अधिक प्रिय होते है, इसकी घोषणा कलाकार गाकर ही करते □ □□□

"□□ □□□□□□□□□□ □□□ □□ी □□□।
अज राती लीला खेलनी अमर सिंह रोठौर||"

□□□□-□□ ो□□□ □□□ □□□□ □□ इन नाटकों की कथावस्तु धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक कुछ भी हो सकती है। □□□ी □□□□, कथावस्तु, शैली, अभिव्यक्ति म पहाड़ी जन-□□□□ □□ □□ □□□ □□□□ □□ □□न्□□इसम से किसी का भी लिखित रुप नहीं होता, और न ही इसका पूण जीवन ही प्रदर्शित होता है। जहां कहीं कोई प्रसंग भूल जाएं तो भगतिए तुरन्त अपनी ओर से बात बना कर प्रसंग जोड़ लेते ह और कथा का प्रवाह टूटने नहीं देते। □□ □□ □□□-□□□□ □ अधिक प्रभावशावी होता है उसी का अभिनय किया जाता है। □□ि□□

सभी भगत मण्डलियों के नाटकों का रूप एक जैसा नहीं होता। □□□-□□□ □ □□□-गीतों और नृत्यों की झलकियां प्रस्तुति को और रोचक □□□ □□□ □। दर्शकों म से किसी गाने या नृत्य की फ़□□□□□ □ी जाती है जो मण्डली के कलाकार पूरी करते ह। प्र□□: □□ दृश□ □□ दूसरे दृश्य अथवा एक नाटक से दूसरे नाटक के बीच म लोक-□□□ी □□ □□□-नृत्यों का कायक्रम जारी रहता है। □ढ्ढी-गद्दन का स्वांग अक्सर हर मण्डली द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। □□□ □□□-□□□ी □ी □□□□□ □□□□ □□ इन स्थानिय कथानकों म मनसुखा का काम "□□□" □□□□ □□ "□□□□ □□□□□" □□□□ □□□-□□□□ □□ □□□□ □□□□ □□□□ □ख□ □□□ □□□□ □□

प्रा□: आधी रात तक कृष्ण लीला से सम्बन्धित प्रदशन होते ह और बाद म अन्य साहित्यिक, धार्मिक एवं ऐतिहासि□□ □□□□ी □□ स्□ि□□ कथाओं पर अधारित नाटक प्रस्तुत किए जाते ह। □□ □□□□ी □□ □ी □□ि□□ □ी □□□-उत्कृष्टता, दर्शकों का मनोरंजन और भगत की साथकता निभर करती है। □□□ □□□ □□ □□ □□□□□ □□□□□□ी □□ द्वारा समाज म पाई जाने वाली सभी जातियों की नकल बखूबी □□□□ □□□□ □□। □□□ी □□□□-□□□□ □ □□□□ □ी □□□□□ी □□ □□ □□□ी □□□ढ□□ □□□□□□ □□□□□□□ □□□□ □□। □□ □□□ □□□ी □□□□-साथ परदेस की नकल भी कलाकार उनकी भाषा के साथ □□□□□□□ इनम जम्मू क्षेत्र के '□□□□' □□□, □□ ि□ □□□-□□□ □□ की बिशेष पगड़ी □□□□□□□□□ '□□□□' □ '□□□□' □ी □□□ी □□ □□□ □□ □□□□ □□□□□□□□ □□□□□□ □श□□ □ □□□ □□□□ □□ प्रयोग कलात्मक अन्दाज म प्रस्तुत करते थे। □न्□ी□□□□□-□□□ □□□ □ढ□□ि□□ □□□ □□ □□□□ □□□□, □□□□ □□□□ □□ □□□ और शिव का सुआंग काफी प्रसिद्ध ह। इसके अतिरिक्त "□□-□□□"

भी लगाए जाते ह, जिसम भद्दी गालियां, अश्लीलता एंव कामुक-□□□ों □□ □□□□ □□□□□ □□□□ □□ इन संवादों से दशक जहां दंग रह जाता है, वहां इसका भरपूर आन्नद भी उठाता है। □□□ स्त्री-□□ □ा □□□ सुआंगों को देखने से वंचित रहता है। ये सुआंग रात्रि के अन्तिम प्रहर तक अभिनीत होते ह। □□□ □□□-होते भगत के अन्तिम दृश्य प्रस्तुत होते है। अनेक मण्डलीयां इन अन्तिम दृश्यों को अत्यन्त मनोरंजक बनाती है ताकि दशक उत्तम प्रभाव लेकर वापिस जाएं। सुआंगों अथवा ड्रामों के मध्य फ़रमाइशों का □□□ □□ □□□□ □□□□ □□□ "□□" □□□□□□ □□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□। □□□□□ □ि□□□ □□□□ □त्र□□ □□□□□□ '□□' □□□□□□□□□□□□ □□ प्र□□□ □□□□ □□□□ □-

"□□-□□ □□ रु□□□ □ा □□,
मां दे बच्चेयां दी बेल.......
□□□□ □न्□□□□□□□□ □□□□□ □□□□,
□□-□□ रुपइए नूं लक्ख- □क□ □□□□"□.....

"□□□" □□□□□□□ □□□ □□□□, □□□□□ □□□□□-□□□ '□□□□□□' □□□□ा □□म्□□□ □□ □□ '□□□□□□' □□ '□□□□□□□' □□ □□□ □□□□ □□ □□ □□□□ □□□□ □□□□ □□ि□ □ि□ □□ □□□ □ □□□ □□ □□□ □ा □□□□□□□□ □□ा □□ा□□□□ □□ □म्□□ □□□□□□ □□□□ □□□ □□क्रि□यों का है, जिसम प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार ह-

"हरि ओम हरिहर,
□□□ □□□□ □□□□□□□ा,
□□□ □च□□ □□□ □□□□□□□,

□□□□ □□□□ □□□□ □□□□□,
हरि ओम हरिहर.”.........

□□□ स□□□□ □□-देवताओं की आरती भी उतारी जाती है। □□स□□
□□□□ □त□न□ आकर्षक और प्रभावशाली होती है जिसमें सरस्वती की झांकी भी प्रस्तुत होती है। एक पात्र को सरस्वती के रूप में सजाया □□□□ □□ माता को मोर की सवारी में दिखाया जाता है। □□□ □□□□□ □□□□ □□□□-

“कौण देव ने पैदा कीती, कौण देव ने मन्नी जी |
□□□□□ □□□, □□-□□□□ □□............||
□□□ □□ □□ □□□□□□□, □□□ □□□□□-□□□□ □□ |
□□□□□ □□□, □□-□□□□ □□||
आदि शक्ति ने पैदा कीती, तीन लोक ने मन्नी जी |
ब्रहमा,बिष्णु करे रसोइया, इन्द्र भरे जल-□□□□ □□||
□□□□□ □□□, □□-□□□□ □□|
□□□□□□□□□□□□□ □□□□, □□□□□□□□□□□□||”

□□ □□□□ □□ □□ ज□□□ □□ □□□ □□□□ □□□□ □□ □□ □न□ □
हलवा बनाकर चारों दिशाओं को अर्पित किया जाता है तथा सभी दर्शकों में बांटा जाता है। प्र□□ □□□ □ “□□□” □□□□ □□ प्र□□ □□ □□□□ □□□□ □□□ □□ □□□□□ □□□□□□ □□□□□ □□□□□□□ में पात्रों के द्वारा सांकेतिक और प्रतीकात्मक रूप में अभिनय द्वारा □□त्र-निर्माण में भगत ने सराहनीय कार्य किया है।

□□□□ □□□□ □□ □□ □□□-□ट□ “□□□” □□□“□□-□□□□” की महिमा का वरदान माना जाता है, वहीं इसे सतयुग के “□न□-

□□□□□” □□□□□□□□□□ □□□ “□□□’ □□□□ □□□□ □□□□ □□ □□□ □□□ □□ □□ ग्र□□□ □□- मानस और श्रमिक वग इससे भरपूर आन्नद प्राप्त करते थे और रजवाड़े-□□□न्□ □□ □□□□□-□□ □□, □□□□□□□□□ि□□ □□□□□ □□ि□□ □□ □□□□ □□□- रु□□□□ी □□□ □□ □□□□□□ □□□□□□ि□□ □□□ □□□□□□

भगतिए कलाकारों का वाकपटुता एवं अभिनय क्षमता आज भी □□-बड़े शिक्षित व मंझे हुए कलाकारों से किसी भी रुप म कमतर नहीं □□ी □□ □□□□ □□

बांठड़ा की प्रस्तुति:-

किसी उंचे चबूतरे, मंदिर के आहते, गांव के सार्वजनिक प्रांगण म ढ□□□ (□□) □□□□□□ □□□ □□ □□□□□□ □□□□□□ □□□ी स्□□□ बीच म छोड़ दिया जाता है। □□□ □□□ी □□□ □□ “□□□□” का प्रदशन □□□□□ □□□□ □□ प्र□□□ स्□□ □□□-□□□ □ी □□□ □□□□ □□ □□□□“स्□□□ □□□□□□” वस्त्र-□ज्□ □□□□□-□ज्□ □□ □□□□□

मुख्य प्रदशन-स्थल के एक ओर बजन्त□ी □□ □□□□□□म्□□□□ पहाड़ी वाद्यों के साथ बैठ जाते ह। रोशनी की भी समुचित व्यवस्था □ी □□□□ □□ बजन्तरी वाद्यों पर लहरिया बजाते ह जो नाटक के □□घ □□म्□ □□□□□ □□□□ □□□□ □□□□ □□ □□ि□□ □□□□ □□□□ आधे घण्टे तक जारी रहता है और बहुधा तब तक जारी □□□□ □□□□ □□ □□□□□□□□ □□ट्□-प्रदशन हेतु तैयार नहीं हो जाते।

“□□□□” □□ □□म्□ “□□□□□□□” □□□□□ □□ □□प्र□□ ि□□, □□न्□□ □□□, □□स्□□□ □□ □□-□□□□□ □□ि□ □ी □□□□□ □□क्र□

म लोक कलाकार उनके स्वरुप धारण करके मंच पर अवतरित होते □□ □□-□□□□ओं का झांकियां मनमोहक होती है। □□स्□□□ स्□□□□□ □□ □□□ "□□□□□ □□□□" □□ □□ट्□-प्रदशन म सफल होने का वरदान □□□ □□ □□ प्र□□□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□□न्□ "□ि□□□□" का तरह साधुओं का स्वांग प्रदशित होता है।

तदन्तर अन्य धामिक, पौरा□□ □□ □□□□□□ □ि□□□□□□□ शि□-पावति, रुप-□□न्□, □□-भगत, ध्रुवअवतार, राजा हरिशचन्द्र आदि प्र□ि□□ □□□□ □□ □□□-□□□ □□□□□□□□ □□ □ि□□□ □□ ि□□□ जाता है परन्तु पुराने प्रचलित विषय हा "□□□□" □ □ि□□ □□न्□ किये जाते ह। विभिन्न नाटिकाओं के बीच-□□□ □ □ि□ि□क्□ मनोरंजन जुटाने के उद्देश्य से लोक प्रचलित श्रृंगारिक एवं मामिक प्र□□□ □□□, □□□-□□□□□, □□□-□□□□, □□□-□द्द□ □ि□ □□ □□□□ □□ भावाभिनय भी प्रस्तुत किया जाता है। लोक प्रचलित प्रसंगा म गाड का मनमानी, बनिये का सूदखोरा, अशिक्षा से होने □□□ □□□□ि□□ आदि का परिहासात्मक कथन किया जाता है। "□□□□□ □त्□ □□ □□□" □□ □□ □□□-नाट्य का विशिष्टता को घोतक है। "स्□□□" प्रसंगानुकूल वेशभूषा धारण करते ह, नतक परम्परागत वेशभूषा म □□-□□□□ □त्□ □□□□□□ □□□□□□ स्□□□□□ □□□□ □□□□□ □□ पास बैठे गायक भी प्रसंग गायन म भाग लेते ह।

"□□□□□□□□□ट्□" का भाषा म स्थानियपुट के साथ-□□□ □□□□□ का अन्य जनपदाय भाषाओं एंव हिन्दा का ऐसा सम्मिश्रण होता है □□ □□□□ □ा □□□□ □□ □□□-□□□ □□ □□□□□ □□□ □□□ □□□□ि□ अधिकाधिक दशक एकाग्र होकर कथानका म रुचि ले सके।

"□□□□□ □□□□□ट्□" म प्रयुक्त खिचड़ी भाषा का वानगी का एक □□□□ □□ □□

सुमिरत हूं गणपति महाराज,
[illegible]
प्र[illegible]
सुमरित हूं गणपति महाराज
[illegible],
[illegible],
[illegible]
[illegible]

(स्वांगभिनयों का परिचय देते हुए सूत्रधार)

सभी जणों से विणति है, हमारे आज
हरिचन्द्र बांठड़ा सजा है। [illegible]
[illegible]
हरिशचन्द्र राजा एक सचवादी था।
[illegible],
[illegible]

“[illegible]” नाटक का अन्त स्थानिय देवी-[illegible] नाटक की सफलता के लिए देवी-देवताओं का आभार स्तुति रुप म किया जाता है-

[illegible]-बलि जां बलिहारी बलि जां दुग,
आरती करावां तेरी मां, बलि-[illegible]

[illegible]-पावती के खेल म शिव और पावती का सन्दभ दाके हुए एक होने वाली मूख सास का चरित्र प्रस्तुत होता है। भगवान शिव की आज्ञा का उल्लंघन होने पर शिव रुष्ट होकर निज-[illegible] त्याग कर कैलाश पवत पर चले जाते ह। [illegible] पुत्री के रुप म जन्म लिया। [illegible]

□□□□□ □□□□ सती का परिक्षा लेने के लिए भगवान शिव साधु के वेश □ ि□□□□□ □□□□ □□□□□□□□ हिमालय का पत्नी- ि□□□□ □ा □□□□ वाला सास, शिवजी को नहा पहचानती। □□ □□□ □□□ □ा □□ □□□ □□□□ □□□□ □ा □□□ (□□□□□) □□□□ □ऱ□-□□ा □□□□□□ □□□□ पुत्री विवाह म नहा देगी-

□□□□ □रु □ □ □□□□ □□□□□ □□□

□□ □ऱ□□ □□□ा □□□□ा □ □□□

□□ □□□□ ि□□ □□ □□□□ □□□□ □□ □□ □□□ा □त्रि □□ि□□□□ □ करने का निश्चय सुनाता है-

□□□ □□□□□ □-बी न बियाऊं।

तब शिवजी ने अपना असल रुप प्र□□ ि□□□- सिर स्वग से लगाया □□ □□ □□□□□ □□ □□□□ ि□□-

□□-□□□□□□□ □□□□ रु□

ि□□ □□□ □□□□□□□□ □□□ □□□□□□□□

यह रुप देखकर बुढ़िया सास का आंखे खुल गई। □□□□□□□ □□ □□ □□□□ □□ □□□□ क्ष□□ □□□□ □□ □□□- □□□□□ □□□ □,□□□न्□□ □□ □□□□□ □□ तू भी डायन न बोल, म भी रावल नहा कहूंगी-

□□-□□□□□□□□ □□□□ रु□,

□□□□□□□ □□□□, □□□□□□□□□ □□,

□□□□ □□□□ □□□, □□□ □□□□□□□□□

प्रचलित शिव, वन्यदेवता, गणपति, सरस्वती आदि देवा का आराधना □□□□□ “□□□□□” का मूल नाट्य सवदा हिन्दा और पहाड़ी □□ि□श्र□ बोला म प्रस्तुत होता है। भाषा का यह चटपटा स्वरुप नाट्य को □ि□□ □□□□ □□□□□ □□ इसम संवाद चुस्त और भाषा प्रभावशाला □□□□ □□ □□□□ □□□□ □□ि□□ □□□ □□□□ ि□□□ रु□ □□□□□□□□□

होती है। इससे कथानक के क्रम को समझने के लिए एकाग्रता बनी □□□□ □□

□□ धार्मिक और पौराणिक विषयों के अतिरिक्त "□□□□" □ स□ि□□ □□□-साहित्य और संस्कृति के विषय भी छोटे-छोटे रूपकों म प्रस्तुत होते ह। □□□ □□□-□□□□, □□□-□□□□, □□□- □द्द□ □ि□ □□ खेल बहुत प्रसिद्ध ह। □□ □□□-गीतों की धुनों और संगीत पर □ □ि□□ □□ते ह जहां श्रृंगार और वियोग की भावना जागृत रहती है-

□□□□□□□ □□□-□□ □□ □□□□□, फि□ □□□□ □□□□□ □□□

हाय बो मेरिए जिन्दे बिच कै बौ नसाणी हो।

□□□□□□□ □□□-□□ □□ □□□□□, फि□ □□□ □□□□□ □□□

हाय बो मेरिए जिन्दे बटण नसाणी हो।

□□□-कथाओं पर आधारित रूपकों का सीधा सम्बध दर्शकों से होता है। वे समाज की परिस्थितियों से जुड़े होते ह। □□□□□□□□□ □□ि□ होते जिन्ह पात्र स्वयं नहीं जीता, न वे लोकमान्य जीवन से अलग-□□□ □□□□□ ग्राम्यचल म गाई जाने वाली लोक-□□□□□□□ □□□-□ट्□ि □□ □□□□ □□□ □□ वे किसी चरित्र विशेष की बात करती ह। प्रसंग से प्रसंग जुड़ते ह। □□□-गीतों और गाथाओं के रचयिता का □□□ □□□ □□ि□□ गाथाकार के कण्ठ म पात्र स्वयं विराज करते ह। उसके माध्यम से वे गाते ह, नाचते ह तथा अनेक तरह की लीलाएं □□□□□ □□□□□ □□□□□ि □□□-गाथा म सामाजिक परिस्थितियों का सही चित्रण प्रस्तुत होता है-

□□□□ □□□□□□□□ □□□ि □-□ि□ □□□ □□□□ि

□□ □त□ □□□□ □□□□□□□□□□□□□□□ □□□□□□

कुणी पुरोहित तेरा व्याह लिखेया, कुणी कीती कड़माई

□□□□□□□ि□□ब□□ लिखेया, बापूए कीती कड़माई,

□□□□□ □□□□□

□□□-□□□ □□□ □□□-□□□ □□□□-□□ "□□□□" □ □□□□ का वतमान परिस्थितियां को भी रुपक के माध्यम से प्रस्तुत किया □□□ □□ गाड के स्वांग म घूसखोर गाड का चित्रण प्रस्तुत होता है-

"पांच मांगे दस देणे हो गाडा, तू मेरा रिपोट मत करदा।"

"□□□□" म अभिनीत किए जाने वाले विभिन्न दृश्यां को "स□□" □□□ □□□□□□□□□ □□ "स□□□" □□□ □□□ □□ □□□□□ □ "स□□" □□ □□□□ □□ □-"□□□" □□□ "□स□ □□□□", □□□□ □ख□□ □□□ □ा □□□ □□□□□ □□□ □□□□□□□□□ □□□□□ प्र□□ □□□ □□□ □□ "□□□□" का कोई लिखित आलेख नहां होता। □□□ □□ □□□□ □□ □□ □□□□□□"स□□ा" का एक क्रम निर्धारित रहता □□ "□□□□" □□ □□□□ "□□□□" □ □□□ □□□□ □□□ □□ □□ □□□ □□ □□□ □□□ □□ □□□पश्चात माल का स्वांग किया जाता है।

"□□□□" के विभिन्न स्वांगां का कथ्य भी सामाजिक व समसामायिक घटनाओं पर आधारित होता है। □□□ □□□□□ द□□□ □ा "□□□□" के चरित्र व कथानक का तानाबाना जुबानी बुना जाता है। □□ "□□□□" का काफा प्रचलन था तो कई गांवां म इसे प्रस्तुत करने वाला पाटियां थीं। □□ □□□□ा "स□□□" □□ □□ □□□ □□□□ □ □□□ □□□□ □□□□□ □□□ □□ □□ □□ "□□□□" का प्रस्तुति के लिए □□□ □□□□ □□□□□□ □□□ □□□ □□□ □□□-□□□ □-□□□ "□□□□" □□ा □□ □□त्रि□ □□□□□□□ □□□□□ □□□□□ □□□ □□□ □□□□□ वाला पाटा को विशेष पुरस्कार दिया जाता था। □□□"□□□□" □□ा □ा प्रातयोगिता हा कहा जा सकता है। □□□स□ष □□□ □□ि □□ □□□ □ण□-□□□ □ "□□□□" □□ □□□□ प्र□□□ □□□ □□□□ □□□□ □□□ □□□□□ा □□□ □□□ □□□□□ □प्र□□ □□□

□□□-□□ट्□, □त्□ □□ □□-त्□□□□ □□□□□□□□-□□□□□ा □□□□□

उस जमाने म लोगा ने बांठड़ा के रुप म एक स्वस्थ और सामाजिक उद्देश्या का पूर्ति करने वाला "□□□-□□ट्□ □□□□" स्□□□□□□ ि□□□ था, जो आज के विभिन्न व्यवसायमूलक मनेरंजन साधना से कहा □ि□□ □□□□ □□□

"□□□□" □□□□-□□, □□□□□□-साहणी आदि पर केन्द्रित स्वांगा म तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था का खामियां का ओर इशारा किया □□□□ □□ □□□□□-साहणी के स्वांग म राजतंत्र के समय म व्याप्त मुजरा प्रथा का चित्रण किया गया है□ □□□□ □□□ □□□-□□ि□□ा द्वारा ग्रामीण किसाना के शोषण किए जाने का वृत्तांत रोचक ढ़ग से व्यक्त किया जाता रहा है। डाऊ के स्वांग म ढ़ांगी चेला तथा साधु के स्वांग म पाखंडी साधुओं को बेनकाब किया जाता है। "□□□□" □ धार्मिक चरित्रों के माध्यम से पांगापंथी अंधविश्वासा को बढ़ावा नहा ि□□□ □□□□ "□□□□" के चरित्र न तो देवलोक के वासी रहे ह और न हा बड़े राजघराना का विलासितापूण कथाओं को इसम जगह मिला है। □□ □□□□-सुख व विषाद हास्य के माध्यम से मुखरित होते ह, □□ि□□ □□-□□ट्□ □□□□ □□ □□ □□□□ □□□□□□ □□□ □□□ □□ □□ □□□ा □□□□□□□ □□□□ □□ □□□

"□□□□" के नायक समाज के विभिन्न वर्गा के श्रमजीवी लोग हा रहे ह जो अपने समय का सानाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था म शोषण के शिकार रहते ह, जो तात्कालिक व्यवस्था तंत्र का □□□□□ि□□ा □□ □□□ रखत हुए सत्य को हास्य रुप देकर सीधे व्यवस्था पर चोट करते रहे ह। "□□□□" □□□□□□□ □ा □□□□□□ व्यवस्था का आईना रहा है, जिसके माध्यम से तात्कालिक समाज का □स्□□ □□ □□□-□□□ □□□ □□ □□□□ □□□

"□□□□ □□ □□" का स्वांग अंग्रेजी हुकूमत का उस नीति को □□□□□ □□□□ □,□□□□□□□□□ □□ □□□□ □□ □□□ □□□ □ □□□□□ को चरिताथ करते हूए अंग्रेजां ने लंबे समय तक हिंदुस्थान पर राज □□□ □□□ इस स्वांग म लोक कलाकारां ने अंग्रेज और जमन के बीच कर उगाहा को लेकर लड़ाई को दुसरे महायुद्ध के प्रतीक के रुप म प्रस□□ □□□ □□ चूंकि अंग्रेजां का ओर से इस लड़ाई को हिन्दुस्तानी लड़ रहे थे, जाहिर है इस जंग म जीत हिन्दुस्तानियां का होनी थी। मगर जीत का श्रेय लूटने वाले वहा गोरे थे, जिन्होने संकड़ो सालां □□ □□ □□□□ □-भाग पर अपना साम्राज्य चलाया।

मंगलाचरणः-

□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□□□□"□□□□"- □□□□□ □ □□□ (□□□) □□ □ □□□□ □□ □□□ □□□□□□ □□□□□ □□□□□□□□□ परन्तु अब ऐसा देखने म नहां आता। अपने मौलिक और आरम्भिक रु□ □ "□□□□" अपने प्रतिपक्षी करियाला से भिन्न रहा है। "□□□□" का असल रुप, जो सभी क्षेत्रों □ □□□□ □□□□ रु□ □□प्र□□□ □□□ □□ "□□□□ □□□" □ □□ले□□□ □□□ "□□□□ □□" □□ □□म□ □□ तक नहां होता जब तक विभिन्न प्रकार का देवस्तुति तथा मंगलाचरण नहां हो लेता। सवप्रथम नाट्य परम्परा और विदया के प्र□□□ □□ □□ □□□□□□□ □□□□ □□-

□□□□ □□ □□,

□□□□ □□□□, □□□ □□□□,

□न्द्र□□□□, □□□□ □□□□,

□□-□क्ष□ □□□□ □□□□

□ि□□□ ि□□ □□□□□

□□□□□ ि□□□□□, ि□□ □□ □□□□,

□□ □□□ प्र□□□, क्रं□□-□□ण□□ □□□□.

□□□ □□□□□ □□□□

सुमिरो शिव देवा।।

□□ □□□□□□□□, □□ □□□ □□□□□□,

□□□□□□□□, □□ □□□□ □□□□,

□□ □□ □□ □□□□

सुमिरो शिव देवा।।

तत्पश्चात विभिन्न अन्य देवों म सवप्रथम अथात् वन्यदेवता को □□□ □ी □□□□ □□ जंगली को झांकी के रुप म प्रस्तुत किया जाता है। □□□□□□ी □□ □म्□-लम्बे बाल, गले म फूल-पत्तों के हार, शरीर हृष्ट-पुष्ट, मुखाकृति लाल और रुप भयंकर होता है जिससे डर लगता □□ वन्यदेवता की आराधना सभी कलाकार इस प्रकार करते ह-

□□□ □ □□□ □□□□□,

□□ ि□□□□ □□□□ □□□□

□□ □□□ □□□□□ी □□□□□,

□□ □□□□ □□□□ प्र□□□□

□□ ि□□□□ □□□□ □□□□

अपनी स्तुति सुनते ही जंगली महाराज पूछते ह-

तुमने जो मेरी आराधना की है उसका क्या कारण है। □ □□□□ □□□□□ □ □□□ □□-परियों और किन्नरियों से आलाप कर रहा था।

तुम्हारी वाणी सुन कर सभा म प्रस्तुत हुआ हूं। तुम्हारे मन म जो [illegible]

इस पर नाट्य का सूत्रधार प्राथना करता है कि हे जंगली [illegible], [illegible] "[illegible]" [illegible] [illegible]त्र [illegible]द्धि [illegible] ह, उन्ह बुद्धि का वरदान मिलना चाहिए।

[illegible]-[illegible] [illegible]- हमारे म इतना सामथ्य नहीं है, तुम गणपति की आराधना करो। [illegible]-[illegible]-

[illegible],
[illegible]
प्र[illegible]
[illegible],
[illegible], [illegible],
[illegible], [illegible],
[illegible]
सुमिरत हूं गणपति महाराज।।

भक्तों की पुकार सुन कर गणपति मंच पर आते ह और पूछते [illegible]- हे सूत्रधात्र, तुने जो मेरी आराधना की वो किसलिए। [illegible] पूजा स्थल म बैठा भगती म लीन था। [illegible] प्र[illegible]

सूत्रधार अपनी पूव प्राथना दोहराते ह- [illegible], [illegible] "[illegible]ट्" [illegible]

[illegible]- [illegible] इसके बाद सरस्वती देवी की आराधना की [illegible]-स्थल पर उपस्थित होकर पूछती है.....

हे सूत्रधार, तुने तो मेरी आराधना किसलिए की, म अपने माता-पिता के पास बैठी तानमृत कर रही थी, तेरी वाणी सुन कर सभा म प्राप्त हुई हूं। जो तेरे मन की इच्छा है सो मेरे पास कथन कर।

□त्र□□- □□□□□ि□ि□ □□, □□□□□ □ “□□□□ □□” □□□ □□ पात्र बुद्धि के हीन ह। उन्ह बुद्धि का वरदान मिलना चाहिए। सरस्वती उनके तथास्तु कह कर वरदान देती हुई मंच से प्रस्थान □□□□ □□

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि “□□□□ □□-□□ट्□” □ी विशेष मयादा और परम्परा रही है तथा इसका आरम्भ शिव के □□□□□□ □□□□ □□□□ □□ी □□□□□ □□□□□ □□ □□□ □□ गणपति और सरस्वती हिन्दु समाज के पौराणिक देव-□□ □, □□□ और सरस्वती भारतीय समाज की ऐसी दैवी शक्तियां है कि उनकी आराधना किए बिना कोई काय आरम्□ □□ि□ि□□□ □□□□ □□स्□□□ विद्या की देवी है और गणेश ज्ञान के भण्डार और प्रदायक ह। □□□□ के सुशिक्षित और अशिक्षित दोनों समाज म उनका समान सम्मान है। □□□ “□□□□” के अरम्भ म उनका विशिष्ट स्थान कोई अपवाद नहीं □□

परन्तु वन्य-□□ □□ □□□□ क्षेत्र □ी संस्कृति की विशिष्ट उपज □□ □□□ि ि□□□□ प्र□□ □□□-□□□□ □□ □□ रु□ □□ □□□ प्र□□□ थान, थनपाल (स्थानपाल), खेत्रपाल (क्षेत्रपाल) ओड़ी और सा-□□ (□-स्वामी) आदि विभिन्न नामों से पुकारे जाने वाले देवता खेतों और अन्न के स्वामी होते ह, उसी तरह जंगलों, पहाि□□□. □□□□□□, □□□□□, □□□□, □□□□□, □□□□□ि□ □□□ □□□□ □□□□ □□ □□□ प्रसिद्ध ह जो न केवल ग्वालों, चरवाहों, गद्दियों, पुहालों के पशुधन की □क्षा □□□□□, □□□ □□□□-विशेष के स्वामी भी होते ह और अनेक

स्थानों पर उनको पूजा किए बिना किसी बड़े वृक्ष को □□□ □□ि□□□ अन्यथा किसी न किसी तरह की हानि या आपत्ति का होना □□श□□□ □□ “□□□ □□-□ट्□” □□□म्□ □ □□□□□□ रू□ म दिखाना उसकी शक्ति को स्वीकारना है। □□ि□□ □□ि□□ □□ बाद और अन्य दो देवों से पहला स्थान दिया गया है, यद्यपि उसने □□□□ □□□□ता दिखाते हुए गणपति के पास जाने का संकेत दिया □□ □□ स□□ि□□ □□ □□ स□ि□□ □□-□□□ □ि□ □□ □□□ि□□ देवताओं को अपना अगुआ (गुरु) मानते ह और उनका आदर करना अपना कतव्य समझते ह। □□□□□□ □□ □□□ □□ □□□ □□□□ □□ ऐसा ही अस्वाभाविक और विरुपक है जैसे कि□ □□□□ि□□ □□ □□□□ि- “□□□-□ □□□□□□□□□ण□-□ □□□□□□□” ऐसी स्थिति म वन्यदेवता गणपति के पास जाने के लिए स्वभाव से आग्रह करता है, अन्यथा वह अत्यन्त शक्तिशाली है और हर खाली स्थान का स्वामी □□ यदि इस शक्तिशाली वणदेव की आराधना न की दाए □□ □□ □ भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस विघ्न डालते ह, और किसी अनिष्ट की शंका □□□□ □□

बाठड़ा स्वांग:-

“स□□” □□□□ “□□□” □□□ □□□□ □ब्□ □□□□□□ □□□ □□□□ि प्र□□□ □□□□ □□ “स□□” □ब्□ □□ □□ □□“□□ □□□□”। “□□ □□□” की यह प्रक्रिया सदैव दो कार्यों के लिए होती रही है-□□ □□ अभिनय करने के लिए और गुप्तचर का काय करने के लिए कभी-□□□ □□□□ रू□ □□-□□□□□□□□□□ □□□□□ □□ ि□□□ □□□ □□ विवाह आदि के अवसर पर भी कई रूपों म “स□□ □□” कर प्रदशन

□□□□□ □□□□□ □□ “□□□ □□□□ स्□□□” □□ □□□□ □□□□□ □□□□□ प्रयुक्त वेश भरने का प्रक्रिया से भी है। “स्□□□ □□□” □□□ □□ श्रेष□□□ रु□ □□ वे हम आनंदित भी करते ह और निदश भी देते है। □□“□□□□” हम व्यक्ति निमाण एवं समाज निमाण दोनां के लिए पयाप्त बोध देते ह। यह बोध इतना सरल, इतना निश्छल और संगीतमय होता है कि वह हम उपदेश या शिक्षा जैसा नहां लगता। स्वांग हमारे सामने जो बोध प्रस्तुत करता है उसका आधार कभी इतिहास होता है, कभी पुराण, कभी हमारे दैनिक जीवन का प्रख्यात □□□□□□

व्यापक अथ म “स्□□□ □□□-□□ट्□” का संपुण विधा का प्रातानिधित्व शब्द है। □□□: “स्□□□” किसी भी ऐसे प्रदशन को कहा □□□□ □□□□□□□□□ □□ □□□ □□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□ रु□ □ खेल कर मनोरंजन किया जाए या कोई नक़ल आदि का जाए। □□□ □ “स्□□□” शब्द लोक नाटक के लिए प्रयुक्त होने लगा। □□□ □□ट्□ के वे रुप जिनके साथ धामिकता जुड़ी है अवश्य “स्□□□” □□□□□□□ □□□□ उदाहण के लिए रामलाला और रासलाला को स्वांग नहां कहा □□□□ □□□□□□ □□□□□□□□ □□□□□□□□□□ □□□□□ □□□□□ □□ □□□□□ □□□ □□□ □□□□ “स्□□□” हा ह।

दशकां का मनोरंजन करना और उससे भी ज्यादा उन्ह हंसाना □□ “स्□□□” □□ □□ □□श्□ □□ □□ □□□-□□□□□ □□□□□-□□□ □□□ “स्□□□” इन सामाजिक कुरातियां आदि पर व्यंग्य अवश्य कसते थे। □स्□□ □□□ □□ □□ □□□ □□□□□□ □□□ □□ □□□ □□“□□□□” □□ सशक्त विधा थी।

करियाला, बाँठड़ा और भगत का तुल्नात्मक अध्ययन-

पूवरंग-

□ट्□-प्रदशन के पूव रंगशाला के विघ्नों को दूर करने के लिए कलाकारों द्वारा किए गए नाना अनुष्ठानों को पूवरंग कहते है। □□□ □□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□□ □□□□□ि□□□ □□□□□□□ □□□ □□□□ □□ ि□□□□ □□□□ □□ □□□□□□□ □ □ट्□ □□□ □□□□□□□□□ □□□ि □□□□□-बार निघ्न डालने से दशकों का रस भंग होता था। □□ से आर्यो ने बन्द घेरे म (पेक्षालय) नाट्य-□□□ □□□□□□रु ि□□। □□□□□ि-नाट्य निरन्तर खुले मैदानों म खेले जाते रहे परन्तु विधर्मा, अमांगलिक शक्तियों द्वारा विघ्न डालने का भय कलाकारों के मन म □□□□□ □□□□□ □□□।

□□: ि□घ□-□□□□ □□□□□-निवारण हेतु नाट्यारंभ से पूव नान्दी पूजा खाड़ा बाधना, रंगस्थल पर पवित्र अग्नि प्रज्जवलित करना, देवी-□□□□ □□□□ □□-पिशाचों को प्रसन्न करने के ि□□ □□□□□□□ □□ रुप म स्तुतिगान करना, आरती करना आदि नाना प्रकार के अनुष्ठानों की परम्पराएं कायम हुई। ि□□□□□ □□□□□ □□म्□□□ □ □□ नाना पूवरगों का पालन किया जाता है।

हिमाचली लोकनाट्यों के प्रस्तुतीकरण से पूव खाड़ा बाँधने अधवा □□□ □□ि□ि-ि□□□□ □□□□□ □□□-□□□□प्रि□□ □□ □ि□□□□□ □ि□□□□□-करियालची और बजन्तरी खाड़े के भीतर जलते धुने की तीन बार परिक्रमा करते है। आग म अक्षत फकते है, मन्त्रोंचार करते □□ प्र□□ □□□□□□ नटी और सूत्रधार के रुप म चन्द्रावली और डाँगर □न्□□ □□□□हाथ म जलती हुई धूपबती लेकर खाड़े म प्रवेश करते है। इस धूपबत्ती को बजन्तरियों के ढोल-□□□□□□□ ि□□□□□□ □□

लोकवाद्यों और बजन्तरियों के आगे झुककर प्रणाम करके, धूने की □□□ □ि□क्र□□ □□□□□□ अन्य लोकनाट्यों म खाड़े के एक ओर □ि□□□ □□□□□, □□□□□ □□□□□□ □□□-बन्धन की रस्म पूर्ति कर ली □□□□ □□ अनेक नाट्य विधाओं म भट गायन के उपरान्त गणेश-वन्दना करके, खाडत्रे की मिट्टी को सिर नवांकर पूररंग की औपचारिकता का निवाह किया जाता है।

'□ि□□□□' का प्रारम्भ करियाला ताल से होता है।

'□□□' का प्रारम्भ सुखणा के बाद डौरु (वाद्य यन्त्र) तथा अन्य ताल □□□□□ □□

'□□□□' का पूवरंग लहरिया ताल से होता है। तीनों लोक नाट्यों म □□□□ □□□□ □□

प्रारम्भ-

'□ि□□□□' का प्रारम्भ चंन्द्रावली नृत्य क् साथ होता है।

'□□□' □□ प्र□□म्□ □□□ □न्□□□ □□□□□ □□□□ □□ □□□□□। □ष□ □ी□ □□□रु □□□□ □□

'□□□□' का प्रारम्भ मगलाचरण से होता है सवप्रथम शिव, गणेश तथा □□स्□□□ □□ □न्□ □□-देवताओं की आरती से शुरु होता है।

तीनों लोक नाट्य विधाओं का प्रारम्भ देवताओं की पूजा अचना तथा □□□□ □□□□□ □□□□ □□

स्वाँग-

'□ि□□□□' म चन्द्रावली नृत्य के बाद साधुओं का स्वाँग शुरु होता है।

‘□□□’ म कृष्ण लीला जैसे- □□□□ □ी□, □ल्□-मुन्दरी आदि से शुरु □□□□ □□

‘□□□□’ म मंगलाचरण के उपरान्त करियाली की तरह साधुओं का स्वाँग से प्रदर्शित होता है।

‘□ि□□□□’ □□ ‘□□□□’ का पहला स्वाँग एक जैसा ही होता है जबकि ‘□□□’ का पहला स्वाँग कृष्ण लीला के साथ शुरु होता है जो ‘□ि□□□□’ □□ ‘□□□□’ □□ि□न्□ □□

सूत्रधार-

‘□ि□□□□’ म सूत्रधार का काम पुरबिया करता है जिसे मज़ाकिया भी □□□ □□□□ □□ यह दोहरे अर्थों म बात क□□□ □□

‘□□□’ म सूत्रधार की भूमिका मनुसखा निभाता है जिसे ‘□□’□ □□ □□□ □□□□ □□ यह भी दोहरे अर्थों म बात करता है।

‘□□□□’ म भी हर स्वाँग म एक चरित्र मज़ाकिया होता है जो हर बात को मज़ाकिया तरीक़े से पेश करता है। □□ □□ □□□□□□□ि □ □□□ □□□□ □□

तीनो लोक नाट्य विधाओं म ही सूत्रधार की तरह ही चरित्र होता है □□ □□□‘स्□□□’ को बाँध कर रखता है और तीनों लोक नाट्यों म दोहरे □□ि □□ प्र□□□ ि□□□ □□□□ □□

कलाकार-

‘□ि□□□□’ □□□ □□ट्□ □□□□□□□□ ि□□□ी □□ि□ □□□□□ □□□□□

‘□□□’ के कलाकार भी निम्न जाति से सम्बन्ध रखते है।

'□□□□□' म ऐसी कोई विशेष परम्परा नहां रहा, इसके कलाकार उच्च जाति के हा होते थे, लेकिन वाद्य यन्त्र बजाने वाले कलाकार निम्न □□ि□ □□□ □□□□□□

□□: '□□□□□' को छोड़कर दोनो लोक नाट्य विधाओं (करियाला और □□□) के कलाकार निम्न जाति के हा होते थे।

प्रस्तुति स्थल-

'□ि□□□□' का प्रस्तुति स्थल खुले म हा होता था, मुख्यत: □□ □□□□ म होता था ताकि ज़्यादा से ज़्यादा लोग बैठकर इसका आनंद उठा सके, और इसके प्रदशन रात को हा होते थे। □□□□□ □□ि□□ छ□□□□ (□□) □□□ □□ □□□ □□□□ □□□□□ □□□□□ ि□□□ □□□□ □□।

'□□□' □□ □□□□□ □ख□□□: किसी के प्रांगण म किया जाता था। □□□ □□ □□□□□ □□ि□□ छ□□□□ (□□) □□□□□ □□□ □□□□ □□□ □□ ि□□□ □□□□ □□।

'□□□□□' का प्रस्तुति कासी ऊँचे चबूतरे पर या मन्दिर के आहते या गाँव के सावजनिक स्था□ं □□ ि□□□ □□□□ □□। '□□□□□' □ □□ □□□□□ के लिए घ्याना (आग) जलाकर तथा मशाल जलाई जाती थी।

आलेख-

'□ि□□□□' का कोई लिखित आलेख नहां होता था। □□□ स्□□ □□□□□□ □ं □□□□ □□□□□□□ □□□□□□ं □□ □□□ □□ि□□ रु□ □□ याद रहते थे, वो समय और स्थान के हिसाब से उसम बदलाव भी □□□□□□ '□ि□□□□' के स्वाँगां का भाषा मिश्रित थी अथात् इसम पहाड़ी, पंजाबी तथा कुछ शब्द अंग्रेज़ी के भी प्रयोग होते थे।

'□□□' □ □□ '□ि□□□□' का तरह कोई लिखित आलेख नहां होता। '□□□' के कलाकार इतने मंझे होते थे कि वह परिस्थिति के अनुरुप □□□□□ □□ □□ □□□ □□□□ '□□□' के स्वाँगां का भाषा म मिश्रित भाषाओं का प्रयोग किया जाता था।

'□□□□' के स्वाँगां का भी कोई लिखित आलेख नहां होता। □□□ □ स्थानिय पुट के साथ- साथ पहाड़ी का अन्य जनपदाय भाषाओं एवं हिन्दा का ऐसा सम्मिश्रण होता है जो नाटक का भाषा को सहज- □□□ □□ □□□□□ □□□ □□□ □□

आलेख के विषय म भी तीनां लोक नाट्यां म समानता दिखाई देती □□ तीनां हा लोक नाट्य परम्पराओं म लिखित □□□ □□ि□□□□ □□। तीनां लोक नाट्यां के आलेख चटपटे तथा मिश्रित भाषाओं म प्रस्तुत ि□□ □□□□□ तीनां के आलेख धार्मिक तथा सामाजिक विषयां पर □□□□□,□□□- □□□ □□स्□□ □□□□□□ □□ □□ □□□ □□□□□,□□□□ मनोरंजक ढ़ग से लोगां के सामने प्रस्तुत किया जाता था। □□□□ां का संख्या कोई निश्चित नहां होती थी। □□□□□ □□ □□□ □□ □□□□ □□ि□ '□□□□' लोक नाट्य विधा म '□ि□□□□' □□ प्र□□ ज़□□□ ि□□□□ □□,□□□-□□□ □□ '□□□□' □□ '□ि□□□□' □□ □ा □□□□□□□ लगते है जैसे प्रस्तुति का आरम्भ आलेख तथा वाद्य यन्त्र आदि सिफ बोला का फक दिखता है। तीनां विधाओं म कोई स्त्री कलाकार नहां होती थी, स्त्रीयां के पात्र पुरुष कलाकार हा निभाते थे। □□□ भी तीनां लोक नाट्यां म समानता दिखाई देती है।

लोक नाट्यां का वर्गाकरण-

□□कधर्मा नाट्य परम्पराओं के प्राय: सभी रुपां मे नृत्य, नाट्य, संगीत एवं नाट्यवाता के तत्व समन्वित रुप से परस्पर घुल-ि□□

□□ □□□□□□ □□ □□□ □□□□□□ □□□□□□□ □□□□□□ □□ □□ □□□□ □□ □□□□□□ □□□□□। □□ट्□ □□ □□□□□ प्र□□□□ □□□□□□□□□□ □□ि□□ □□□ □त□-□□□□ □□ □□□□□ ि□□□ □□□□ □□□□ □□□ □ि□□□-नाट्यवाता का । □□: किसी भी लोकनाट्य विधा म निहित सहज अभिव्यक्तियां का पाथक्य सहज सुगम नहीं है। □□□ लोकनाट्यां म मानव का सभी सहज अनुभूतियां- अभिव्यक्तियां का प्र□□□□□ □□ प्र□□: □□ □□□□□□□ ि□□□□ □□ □□: नाट्य तत्वां का प्रधानता के आधार पर भी लोकनाट्यां का पाथक्य सम्भव है। □□□ □□□□□□ □□□न्□□□ 'डॉ0 सत्येन्द्र' ने लोकनाट्यां का वर्गाकरण इस प्र□□□ □□ि□□□ □□-

(1) नृत्य प्रधान (2) नाट्य प्रधान (3) संगीत प्रधान (4) □□ट्□ □□□□-प्र□□□ ।

□□ट्□-तत्वां का प्रधानता के आधार पर हिमाचला लोकनाट्यां का वर्गाकरण हम समाचीन प्रतीत नहीं होता। लोकनाट्यां का अनेक □□□ ि□□□□□□ □□□□ □□□ □□ट्□-तत्वां का इतनी भरमार रहती है कि किसी एक तत्व विशेष का प्रधानता का आकल□ □□□ □□ि□□□□ । □□□□□ि □ि□□-नाटकां का परम्परा म नृत्य, संगीत, नाट्य एवं उनम किसी एक का प्रधानता ढूँढ पाना सुगम नहीं है। 'डॉ0 सत्येन्द्र' ने लोकधर्मा नाट्यां के वर्गाकरण म तात्विकता का अथात शास्त्रीय □□□□ ग्र□□ ि□□□ □□ इनके वर्गाकरण पर वि□□ □□□□□□□ □□ नहीं भूलना चाहिए कि ये लोकनाट्य ह, लोकाश्रय म पल्लावित, विकासित होने वाले, लोकपरम्पराओं से परिचालित और पोषित □□□□म्□□□ □□□□ट्□ □। शास्त्रीयता से मुक्त होकर भी तन्त्र का दृष्टि से ये सवाग सम्पूण ह। □□: □□□□ व□□स्□, □□□-व्यवस्था, अभिनयशैला और प्रदशन शिल्प का दृष्टि से अनेक परम्पराएं ऐसी

कायम हुई है कि वे ही धीरे-□□□□□□□ □न्त्र □□ □□ □□ □□ परम्पराएं इन नाट्यों को लोकनाट्यों के गुणों से गिरने नहीं देती।

□□: लोकनाट्यों के वर्गीकरण हेतु लो□-□□म्□□□ □ □□□ □ □□□ ग्रहण करना ही समाचीन होगा। □□□□□ □□ट्□□□□ □□□□□ अध्ययन से ज्ञात होगा कि लोकनाट्यचार्यों ने लोकनाट्यों की अनगिनत विधाओं म से अधिकांश के प्रस्तुतिकरण का शिल्प-□न्त्र □□म्□□□ □□□□□□□□ □□□□। □□□ □□□□□□ □□-□□□□ □ □□□ चरित्राभिनयों को '□□□' की संज्ञा मिली और रासलीला, रामलीला की वैष्णवी लोकमंचीय परम्पराएं सुदृढ़ हुई। लोकधर्मी अध वैष्णवी □□□ □ □□□ '□□□' □□ □□□ □□□□। □□□ प्र□□□ प्र□□□□□□□□ □□□□□□ □□म्□□□ □□'□□□' □□□ □ □ □□□-□□□□ प्र□□□ □□□□ 'ख□□□'। □□□ □□म्□□□ □□□नुमोदित इन लोकधर्मी नाट्यरुपों ने स्वंय अपना विशिष्ट शिल्प निर्मित किया। यथा लीला, स्वांग, नाटी, ख□□□।

अस्तु, लोकनाट्यों की शिल्प-प्रक्रिया म अनेक प्रवृतियां प्ररिलक्षित □□□□ □□ इन प्रवृतियों के प्रमुख भेदों के आधार पर हिमाचली लोकनाट्यों का इनम अध्ययन एवं विश्लेषण की अनेक सम्भावनाएं □□ □□□□□ □□

□□: हिमाचली लोकधर्मी परम्परा के सभी प्रचलित नाट्य रुपों का □□□□□□ □□ल्□-प्रक्रिया के आधार पर इस प्रकार किया जा सकता है- (1) □□□□□ (2) स्□□□ (3) □□□□ (4) ख□□□ (5) □□ □□□□ प्रकीर्ण

हिमाचल प्रदेश म प्रचलित परम्परा के लीलाधर्मी नाट्यों यथा रामलीला, सनकादिकों की लीला, कृष्ण लीला, लव-□□ □□□□ □□□ बौद्धावतारों से संबंधित '□□□' नाट्य तो लीलाएं वग म रखा जा

□□□□ □□ शिल्प की दृष्टि से इन सभी लोकनाट्यों म बहुत साम्य है ।

‘स□□□’ □ि□□□ □□ □□□□ □□ व्यापक अथ म स्वांग लोकनाट्य की संपूण विधा का परिचायक शब्द है परन्तु अभिप्राय की दृष्टि से देख तो यह प्रहसनात्मक नाट्य रुपों के लिए प्रयुक्त शब्द है। □□□ सभी लोकनाट्य विधाओं का अंतभाव इस वग से संभव है, जिसम □□□ पात्र किसी अन्य व्यक्ति का रुप धारण कर नकल कर अथवा नकल का सावजनिक प्रदशन करे। हिमाचली लोकनाट्यों यथा करियाला, हरणातर, हरण, बांठड़ा, झमाकड़ा, चन्दरौली, भगत, सिठणी आदि प्रहसनात्मक लोकनाट्य रुपों का समावेश ‘स□□□’ □□ □ □□□□□ □□ि□□□ □□ □□□□ □□

‘□□□ी‘ वग म हिमाचल की लोकधर्मी नृत्य-प्र□□□ □□ि□□□ी □ी , परम्परा के नाट्यों यथा नाटी, दानव नृत्य, मकर नृत्य, फागली, सैन, ठोडा बुड़ा सिंह आदि को रखा जा सकता है । □□ □□□ □ाट्□-रु□ी □ □□□ □□□□ □□□□□-साथ मुकाभिनयों की परम्परा मिलती है।

‘ख□□□‘ □ब्□ □□□-□□□□ प्र□□□ □□□□□ट्□ □□□□ ‘□□□□□‘ परम्परा के ऐसे लोकनाट्यों के लिए परम्परा से प्रयुक्त होता है जिसम काव्य और संगीत पक्ष इतना प्रबल हो जाता है कि पात्रों को □ि□□□-मुद्राओं के प्रदशन की आवश्यकता नहीं रहती ।

‘खेल अथवा प्रकाण‘ वग म हिमाचल लोकमानस की अनुष्ठानिक विचारणा से प्रेरित कौतुकनाटयों अथवा लोकानुरंजनो को यथा देऊ-□□, □क्ष□- □□, □त□□-□□, □□□□□, □□□□□, □न्□ी, □□□□□-खेल आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

आधुनिक काल का कथ्यों पर प्रभाव-

□□ि□□□□ □ा □□ □□□□-भाग ने इन लोक कलाओं के कथ्यों पर प्रभाव डाला है कि जिस प्रकार राजे-रजवाड़े एंव रियासतों के काल म □□ □□□ □ा □□□□□□□□ □□□□ □□□ □□ □□□ □□□ □□□□ □□। उसी प्रकार से आधुनिक काल म जो जो समस्याएं समाज के सम्मुख उपस्थित हुई उसका समावेस इस आलेखों म किया □□□□□□ क्□ि□ □□ि□□□ □ा □□ □□□ □ □□□-तरह के अच्छे व बुरे अनुभव लोगों □□ □□ □ि□ □□□ □च□□ □□ □□□ □□□ □□□ □□ □□, क्योंकि भारतवष □□□-तीन युद्ध झेल चुका था तथा महायुद्ध का विभीषका भी झेल चुका □□। □□□□ □ □□□-□□□ □□□□□□□□ □□ □□□ □□□ □□। □□□□ □□ लगी सीमा हिमाचल का होने का वजह से पंजाब म जब आतंकवाद ने सर उठाया तो नाट्य विधा के कथ्य इससे अछुते नहीं रहे क्योंकि हिमाचल का स्थानिय वातावरण काफ़ी ज़्यादा प्रभावित हुआ क्योंकि हिमाचल से लोग सरकारी नौकरी, प्राईवेट कम्पनियों म काय करने □□,□व□□□□ हेतु तथा उच्च शिक्षा हेतु लोग पंजाब ही जाया करते थे, क्योंकि लोक नाट्य विधाओं म स्थानिय सम्स्याओं को प्रमुख रुप से उठाया जाता था इसी भांति भौतिकता वाद, आडम्बरों एंव युवा पीढ़ी का जो पतन पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति का बुरा प्रभाव पड़ा तथा स□ि□□ रु□ □□□□ समस्याओं को जोड़ कर आलेखों का ताना-□□□□ □□□ □□□□□□□।

इस प्रकार इन आलेखों का वजह से यह आधुनिक युग म यह लोग नाट्य विधा को मान्यता प्राप्त होने लगी तथा आधुनिक रंगकर्मी इस लोक नाट्य विधा को स्वीकार करने लगे। □□ □□ □च□□ प्र□□□ □□।

आधुनिकता का मंच सज्जा पर प्रभाव-

□□-जैसे इस लोक नाट्य विधा के आलेखों म आधुनिक कथ्य □□□□□रु □□। आधुनिक युग रंगकर्मियों का इस विधा के साथ जुड़ाव शुरु हुआ वहीं मंच सज्जा म भी आधुनिक तकनिकों का समानेश हुआ जहां पर यह नाट्य प्रस्तुति रात्री के अंधेरे म □□□□ □□□ □□ □□□ □ □□□- सारी रात प्रस्तुति चला करती थी। □□□□□□ बीच म कलाकार अपनी कला का प्रदशन करते थे और चारों ओर लोग घेरा बना कर नाट्य प्रस्तुति देखा करते थे किन्तु संवय परिवर्तित हुआ लोगों के पास समय का आभाव हुआ और यह प्रस्तुतियां समयानुसार निर्धारि□□ □ी □□□□□□□। □□□ □ण□□□□□□□ इन प्रस्तुतियों का समय 45 मिनिट तक होने लगा तथा आधुनिक, तकनिकी सभी पाश्व मंच विभागों म शामिल हो गई।

□□□□□ □ □□□□ □□ □□□ □□ □□ □□□ी-□□□ □□□□□□ उसके पीछे तैयार होते थे वहां अब बकायदा स्क्रीन लगाई जाने लगी तथा कलाकार तैयार होने के लिए ग्रीनरुम का इस्तेमाल करने लगे। इसका कारण यह भी है कि पूव म केवल पुरुष कलाकार ही इस लोक □□ट्□ वि□□□ □□□ड़े थे अब महिलाय भी इससे जुड़ी है। □□□□ अतिरिक्त मंच सज्जा भी परिवर्तित होने लगी जहां पर पहले मंच पर कुछ भी नहीं इस्तेमाल होता था अब वहां पर अलग-□□□ दृश□ी □□ वि□□ □□□-□□□ स्□□ी □□ि□□ □□□-□□□ □□ वि□□□ प्रतीकात्मक रुप म आधुनिक नाटकों की तरह दृश्य परिकल्पना की □□□□□□□।

प्रकाश परियोजना-

उसी प्रकार से परियोजना भी बदलने लगी जहां पर इस लोक नाट्य विधा म सिफ लकड़ी जला कर प्रकार करके मंच प्रस्तुति होती थी वहां पर गैसबती ने प्रवेश किया तदउपरान्त बिजली ने तथा इन सबके बाद जब प्रशिक्षित रंगकर्मी इस माध्यम से जुड़े तो आधुनिक प्रकाश व्यवस्था का भी सिलसिला शुरु हो गया जहां पहले दृश्य परिवतन प्रकाश म ही होता था वहां अब यह बकायदा आधुनिक यथाथवादी प्रस्तुति की तरह हर एपीसोड के बाद प्रकाश का आना-जाना शुरु हो गया अथात आधुनिक प्रकाश परिकल्पना का अवि□□□ □ □□□।

मुख सज्जा-

पहले पारम्परिक लोक कलाकार परम्परागत तरीके और औषधियां □□□ □□□, □□-रोगन से, रस्सियां से मुख सज्जा किया करते थे वहां आधुनिक प्रशिक्षित रंगकमियो के जुड़ने के कारण यह लोक कलाकार भी आधुनिक प्रसाधन सामग्री का इसतेमाल कर मुख सज□□ □□□□ □□ □□। पहले एक कलाकार सिफ एक बार ही मुख सज्जा किया करता था वही अब यह हर चरित्र के लिए अलग-□□□ □□ □ज□□ करने लग गए इससे इस लोक नाट्य विधा की प्रासंगिकता बढ़ गई तथा ज़्यादा असरदार व यथाथवादी हो गई।

वेश-भूषा-

इस लोक नाट्य विधा म कुछ पात्र तो पारम्परिक ही है जो हमेशा □□□ □□□□□□□-'□□□□-□□□□', '□□ □ □□' इसके अतिरिक्त आलेखानुसार चरित्रों अथवा पात्रों को गढ़ा जाता है। □□□□ □ □□□□ □□ □□ □□-भूषा परम्परागत ही रहती है, कैथ एंव वैद जिनको कि स्टांक फेक्टर भी कहते ह सामान्यत पैजामा बड़े पांचो वाला तथा कुता और ऊपर सर पर गुलाबी रंग की पगड़ी होती है किन्तु अब □□□ □□□ स्□□ □□□□-साथ यह भी परिवर्तित होने लगी है। □□□ भी क्षेत्र म यह कलाकार जाते है वहा संबंधित प्रतिष्ठित नागरिकों □□□ □□-□□ □□ □□□□□ □□□□□। इसके अतिरिक्त अन्य चरित्र आधुनिक होते ह और वे अपने चरित्र के अनुरुप ही वेश-□□ □□□□ □□□□□।

आधुनिक रंगमंच म लोक नाट्यों को महत्वः-

□□□ □□ □□□ □□□□ □□ □□□□ प्रस्तुतियां अलाव के ईद-गिद हुआ करती थीं, किन्तु उनका उद्देश्य अग्नि द्वारा उन्ह आलोकित करना □□□□□। □□ □□□□ □□□ □□□□□□□ □□□□□□□ □□, □□□□ □□□□□ □□ □□□□□□□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□□□□□□ □□ अभिव्यक्ति के लिए रात का समय चु□□। □□ □□□□□□□□□ अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रीक नाटक जानबूझकर धीरे-□□□□□ शाम तक प्रदर्शन किए जाते थे, ताकि आग को नाटक के एक अंग के रु□ □ □□□□ □□ □□□। दिन के उजाले म आग उतनी प्रभावी नहीं □□□□, □□□□□ □□□ □। □□□□ □स□ □□□ग्री □□रु□ □ □□ □□□□ हुई मशालों, दीपकों तथा रोशनी के अन्य स्रोतों का प्रयोग भी मिलता □□

हमारे रंगमंच का उत्पात धम से जुड़ी हुई है, पूर्वा देशां म भी □□□ □□□□ □□□□ □□ □□। □ि□□□ □□□□□ □ि□ि□ि□□□ अनुष्ठान के रूप म मंदिर के प्रांगँण अथवा इसके ईद गिद हुआ □□□□ □□,□□□□□□□□□□□ □□ □□□□ ि□□□।

भारतीय रंगमंच कुछ सीमित पर महत्वपूण परिवतनां के बावजूद, लगभग एक हज़ार साल का अवधि म फैला हुआ है और इसके अनेक सूत्र और रूप आधुनिक युग तक चले आये ह । □□ □□ □□म्□□ □□ आधिनिक युग म, पश्चिमी इतिहासकारां, समाजशास्त्रियां अथवा अन्य विचारकां के अनुकरण म या उसके प्रभाव के कारण, अक्सर हा लोक रंगमंच कहा जाता रहा है जो कई कारणां से भ्रामक है। दरअसल इस लंबे दौर के रंगकाय म अलग-□□□ प्र□□ □□ □□□□□ म जो अनेक नाट्यरुप विकसित हुए, उनम हमारा शास्त्रसम्मत या क्लासीका कलाओं के बेशुमार तत्व मौजूद है। □□ि□□ □न्□□□□□ □□ □□□□ □□□ □□□□ □□□□ □□□□ □□ि□ □□□□□□ग्रा□□ समाजां म सुरक्षित रहे और पनपे ह।

पिछले वर्षा म पारम्परिक नाट्यां पर गंभीरतापूवक विचार करनेवाले विद्धानां और रचनाकारां म इन विभिन्न नाट्यरुपां के इस विशेष चरित्र को ध्यान म रखते हुए, इन्ह “□□□ ि□□□□” □□ “□□□ □□□□” □□□□□□ “□□□म्□ि□□ □□□□” कहने का प्रवृति बढ़ा है।

अनेक प्रदेशां और भाषाओं के सभी नाट्यरुपां को, उनका कुछ □□□न्□ ि□□□□□□ □के कारण, पारम्परिक रंगमंच के अंतगत रखा जा रहा है, पर वास्तव म उनम बहुत विविधता और अनेरुपता है, संस्कृत □□□□ □□□□ □□रु□□□ □□ा□□□ यहा कारण है कि उनम संस्कृत नाट्य परम्परा के अनेक तत्व मौजूद तो ह, पर वे अनिवाय रुप से प्रत्येक प्रदेश का अपनी विशेष भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और

सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्धारित और उनके अनुसार ही □ि□□ि□□-रु□□ि□□ □□

वास्तव में, जिस समय संस्कृत रंगमंच उपलब्धि के शिखर पर रहा होगा, उन दिनों भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी अपनी स्थानिय नाट्य पद्धति□□□□□□ □□□ □□ □□□, □□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□□ □□□ □□ □□□□ □□□□□□ □□□□ □□□□। □□ □□□ कल्पना नहीं है। □□ □□□□□ ि□□□ □□ □□□□ □□ि□ □स□□ □□□□ के निष्क्रिया होने के बाद उनके विभिन्न केन्द्रों के नाट्य-□रु, □ि□□□ □ि□, रुचि, संरक्षण और दर्शक □□□□ □□ □□ □□□□□, □□□□□□□□ □न्द्रों □□ □□□□□ □□□-□□□□□□ □□□□प्र□□ □ □□□□ वहाँ के लोकप्रिय रंगकर्म से जुड़े होंगे। □□ □□ □□ □□स□□ □□□□- प्रदान की प्रकिया एक ही नहीं, अनेक स्तरों पर घटित हुई, इसमें भाषाई, प्रदर्शनमूलक, रुपकारी, सभी प्र□□ □□□ि□□□के□-□□□□ □□ □□स□□ □□-देन हुआ और सभी प्रभावित हुए। □□ प्रा□□□ □□□□- ग्याहरवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवी शताब्दी तक अलग-□□□ प्र□□ □ □□□-अलग रुपों में लगातार चलती ही रही है।

प्रादेशिक भाषाओं का रंगमंच नाटकों पर नहीं, ऐसे नाट्यालेखों पर आधारित रंगमंच है, जो विभिन्न प्रबंधों, काव्यों, मुक्तकों या दूसरे स्रोतों से प्राप्त सामग्री से प्रयोग-प्रदर्शन के लिए तैयार किए जाते थे। इस दौर में जो नाटक लिखे भी गये, वे भी कमोवेश काव्य-□□□□- □त□-प्रधान नाट्यालेख ही है, जिनकी सार्थकता उनके प्रयोग या प्रदर्शन में चाहे जितनी हो, पर स्वतंत्र सृजनात्मक कृतियों के रुप में □□□□□□□□□□ □□

पारम्परिक रंगमंच के प्रदर्शनों के संबंध में यहाँ एक बात को सपष्ट कर देना ज़रुरी है, यद्यपि इसकी □□ □□क्ष रु□ □□□□□

□□□□ि□□□ □□ □□□ □□ इन नाट्यलेखों म कथा या प्रसंग का ढ़ाँचा मात्र होता है जिसके आधार पर प्रदशन म अभिनेता अपनी उपज से, □□□□ □□-रचना की क्षमता से, संवाद गढ़कर बोलता है, कथा-□त्र □□ □□□□□□□ □,□□ □□□-ट□□□□□ □□ ि□□□□ □□□□ □□ □□ □□□ □□□□ □□□□□ □□□□□ □□□क्□-मांस का समावेश अभिनेता ही करता □,□□स्□ि□□ प्रा□-प्रतिष्ठा उसी के द्वारा की जाती है। □□□□□□□ □ी अनुपस्थिति के कारण भी पारम्परिक रंगमंच, संस्कृत रंगमंच से भी अधिक, पूरी तरह अभिनेता का रंगमंच है।

□क ही प्रदशन म एक से अधिक कथानकों के प्रस्तुतिकरण का एक कारण तो यही हो सकता है कि किसी सुनियोजित संरचना के □□□□ □, □□□□ □ि□□□□ □ी □□□ □□ □□-□□□□ □□□□□□,□□ प्रसंग को बहुत देर तक दिखाना आसान नहीं है। □□□ी □□ □□□□ □□□ □□ □□□□□□□□□□ि□□ □स्□तियों और चरित्रों की विविधता बहुत □रु□ी □□ इस संदभ म इस बात पर भी ध्यान दिया जा सकता है कि जात्रा या नौटंकी जैसे नाट्यदलों म, जहाँ नाट्यलेखों की संरचना अधिक सुनियोजित और कथानकों म ज्यादा फैलाव है, वहाँ एक ही कथानक सारी रात, प्रदशन के शुरु □□□□ □□ □□□□ □□□□ □□

पारम्परिक रंगमंच पर बिदुषक या उसका समानधर्मी पात्र विनोद और हास्य और इस प्रकार मनोरंजन का स्रोत तो है ही, पर इससे भी अधिक वह दशकों की अपनी चेतना को, उसकी भावनाओं को, जीवन की स्थितियों के बारे म उसकी प्रतिक्रियाओं को, अभिव्यक्□ □□□□ □,□□□□□ □□□□□ □□ □□ □□ □□□ □□□□□ी □□ प्रतिनिधि, उनकी ही आवाज़ है। □□□म्□ि□□ □□□□ □ी □□ ि□□□ युक्ति उसके लचीलेपन की, समकालीन साथकता की खोज का बड़ा ही □□□□ प्र□□□ □□

उन्नीसवीं शताब्दी म हमारा पश्चिमी संस्कृति से जो साक्षात्का□ हुआ उसने जीवन के सभी पक्षों को बुनियादी तौर पर प्रभावित किया, खासकर भारतीय रंगमंच का तो रूप, दिशा, गति- □□□ □□□ □□□ ि□□□। उसम परिवतन पहले भी कई स्तरों पर हुए थे, पर पहले ढाई- □□□ □□□□ □□□ □ □□□□ □□□□ □□□□ □ि □□□□-दृष्टि □□□□□रू□, □□□□ □स□ति के विभिन्न पक्षों के आधार पर, और अपनी □□□□□□-राजनैतिक परिस्थितियों के दबाव म, नये रूप ग्रहण करता □□□ □□। और सबसे बड़ी बात यह है कि उसम कोई आत्मविभाजन न □□, □□□□ □□ रू□ □□ □ि□□-बोध संस्कृत रंगमंच के चरण म पूरे देश म, और मध्ययुगीन पारम्परिक रंगमंच के चरण म विभिन्न □□□-क्षेत्रों म, सारे जनसमुदाय के लिए लगभग एक जैसा था, भले ही शहरों और गाँवों म उसकी सूक्ष्मता, जटिलता और पद्धतियों म अंतर □□□□ □□।

मगर पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से जो नया रंगमंच हमारे देश म उभरा, वह इन सभी बातों म एकदम अलग था, क्योंकि उसने एक ऐसे रंगमंच के अनुरकण म रूप ग्रहण किया था जिसकी जीवनदृष्टि और सौंदय बोध दोनों ही मूलतः भिन्न थे। □□□□□ ि□□□ □ □□□□ □□□□ □□ □गमंच का उद्देश्य मनुष्य की विभिन्न स्थितियों, अवस्थाओं और भावों के चित्रण द्वारा अंततः आनंद और रस की सृष्टि था, वहाँ पश्चिमी नाटक का उद्देश्य जीवन को संघषमूलक दिखाना और उस संघष के विभिन्न रूपों को उद्घाटित करना था।

विसवीं सदी के पाँचव दशक म, स□□□□□□ ि□□□□□□□□ □□□ बाद, भारतीय रंगमंच के स्वरूप और रंगकर्मियों के उद्देश्यों म परिवतन शुरू होने साथ, पश्चिमी रंगमंच के साथ उसके रिश्ते म भी □□ प्र□□ □□□□□□□ □□□। अब एक ओर पश्चिमी रंगमंच के श्रेष्ठ

नाटककारों के अविकल और प्रामाणिक अनुवादों □□ □त्□□ □□□□□□ से किए गये रूपांतरों के प्रदर्शन किये जाने लगे। □□□ '□क□ि□□□', '□ि□□□' □□□□□□ '□□□□क्रे□□', 'यूरिपिडिज़', '□□□□'□ '□□□', '□□ि', 'ब्रेष्□' तथा अन्य अनेक श्रेष्ट नाटककार शामिल है। □न्□□□□ पश्चिमी नाटक ही नही, रंगमंच के भी श्रेष्ठतम कलात्मक तत्वों और उद्देश्यों से प्रेरणा ली और रंगकर्म को केवल मनोरंजन के बजाय जीवन के सत्य और यथार्थ की गहरी खोज और प्रस्तुति का माध्यम □□□□□।

□□ □□□ □□ □ □□□□'□□□ि□त्र', '□□□□ □□□□□', '□ब्रा□ि□□ □□□□□□', 'श□□□□□ □□□□□', 'उत्पल दत्त', 'ि□□□□ □□□□' □□ ि□□ □□□ □ '□त्□□□ □□□, '□ब□□□ □□□', '□□□□□ □□□', '□. □. □□□□' जैसे निर्देशकों का है जिन्होंने आधुनिक रंगमंच का रूप और स्तर एकदम बदल दिया। एक हद तक रंगकर्म के प्रति इस बदली हूई दृष्टि और चेतना का ही एक परिणाम यह है ि□ □□-□□□□ □□□ मे लगभग एक साथ कई भाषाओं में सृजनात्मक स्तर पर उल्लेखनीय और उत्कृष्ट मौलिक नाटक लिखे गये।

वास्तव में छठे दशक के प्रारंभ से ही '□□□□ □□□□□' □□□ निर्देशक ने रंगकार्य का एक नया देशी मुहावरा गढ़ने की कोशिश शुरु □□ □ी □□, □□□□□ि□□ □□ संस्कृत और पारम्परिक नाट्यों का □□□□□ □□□□□□□ □□□-धीरे अन्य रंगकर्मियों का भी इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ और रंगकर्म का हर पक्ष इससे प्रभावित होने लगा। नाटक लेखन, प्रस्तुतिकरण की पद्धतियाँ, अभिनय, रंगशिल्प, दर्शकों के साथ अभिनेताओं का संबंध, रंग समिक्षा □ि□। □□ □□□□□□ □ अपने प्राचीन संस्कृत और मध्यकालीन क्षेत्रीय रंगमंचों से एक नया रिश्ता जोड़ने की कोशिश होने लगी और इस प्रकार भारतीय रंगमंच

का निरंतरता का एक नया चरण रुपाकार होने लगा। □□□ □□□ □□ अंत तक तो यह प्रवृत्ति समकालान रंगमंच का एक प्रमु□ □□□ □□ गई और देश भर म हर क्षेत्र और हर भाषा म अनेक नाटककार, निदशक, अभिनेता, रंगशिल्पी, किसी न किसी रुप म इस खोज म □□ग□ □□ □□□।

वास्तव म, पारम्परिक नाट्यों के साथ आधुनिक नाटकों का अतः क्रिया यानी भाववस्तु का सृजनात्मकता के अनुसार □□ □□ □ि□□ नाट्यों का संरचना और पद्धतियों के कल्पनाशील संयोजन पर आधारित मौलिक नाटक-लेखन, हा महत्वपूण है और उसम हा कूछ अत्यंत उल्लेखनीय परिणाम निकले है। इस श्रेणी म कई नाटक ह। □न्□□ □ 'ि□ि□□ □□□□□' □□ '□□□□□' □□ 'चंद्रशेखर कम्बार' □□ '□□□□□□ स्□□□', □□□□ □ 'ि□□□ □□□□□' □□ '□□□□□□ □□□□□□', '□□□□ □□□□' □□ 'महानिर्वाण', 'मनोज मित्र' □□ '□□□□□□' □□ '□□□□□ □□□' □□ '□□□□□□ □□□□□□', छत्तीसगढ़ी म '□□□□ □□□□□' □□'□□□□□□ □□□' □□ □□□□□ '□□□ि□□', हिन्दी म 'सवश्वर दयाल □क्□□' □□ '□□□□' □□ '□ि□ □□□□' □□ '□□□□□' □ि□। □□ □□ □□□ □□□□ □□ □□□□□□□□□ ि□□□□□□□ □□ □□□□□□□ और नाटकों का यह सूची भी नयी धारा के महत्व और साथकता को □□ि□□ □□ □□□ □□ इसम न सिफ आधुनिक दौर का कुछ सर्वात्कृष्ट □□□□-□□□□□□□, □□ल्□ बहुत सारे प्रतिष्ठित और नवोदित नाटककारों □□□□□ □□ □।

इन नाटकों म पारम्परिक नाट्यलेखों के अनेक तत्व, सूझ-□□ और कलात्मकता के कई स्तरो पर और अक्सर बड़े प्रभावी ढ़ग से समाविष्ट हुए ह उदाहरण के लिए इसम से अधिकांश नाटकों का ढांचा □□□□□ □,□□□□□ □□□ □□ □□□-व्यपार के विभिन्न सूत्रों को कोई

□त्र□□□, □□□□□ □□ □□□□ □□ □□□□□□□□□□□□ □□ □□□ □ा □□
युक्ति के समावेश म भी बड़ी रोचक विविधता दिखाई पड़ती है। □□
बात भी दिलचस्प है कि सूत्रधार का ऐसी परिकल्पना इन नाटककारा
को अपने प्रदेश के हा या अन्य प्रदेशा के एकाधिक नाट्यरुपा से
मिला है, जिसे इन्होन अपनी आवश्यकता के अनुसार बदला भी है।
इस प्रकार के परिवतन वैसे हा कारणा से हुए है जैसे मध्य-□□ □
संस्कृत नाटका के सूत्रधार को बदलकर पारम्परिक नाटका के सूत्रधारा
□□ रु□ □□□□□ि□□□□□।

पारम्परिक नाटका का एक अन्य तत्व है, मिथक, आख्यान या
□□□ □□□ □□ □□ि□□ □□□□-स्थितिया का व्यंजना के लिए प्रयोग,
जिसके पलस्वरुप लौकिक और अलौकिक, काल्पनिक, मानविय, पशु-
पक्षी, वृक्ष आदि को नाटका म पात्रों के रुप म लाना संभव हो सका है
। □ि□□□□ □□□□ा म कविता, गीत और लयबद्ध संवादा का भी बड़ा
□□□□ □□ प्र□□□ □□□□□ □□ □□□□ □त□ □□ि□□ □□□□□□
रंगमंच के एकदम नये क्षितिज उद्घाटित करते ह।

पारम्परिक नाटका से प्रेरणा लेने के फलस्वरुप अभिनय के
आंगिक और वाचिक दोनो पक्षो के लिए एक विराट नयी दृि□□□ □ा
□□ □□ □□ अभिनेता के शरार के परिक्षण के लिए हा नहा, अनेक
प्रकार का अभिव्यक्तिया के लिए भी, गतिया और भंगिमाओं के
अनेक नये और समृद्ध स्रोत पारम्परिक नाट्या म मौजूद है जैसे-
□त□, □□□, □□ष□□□, □द्ध □□□□□-□□, □□ा □□□□□□ □ि□। □□□
प्रकार वस्तुओं, उपकरणा, स्थितिया, स्थला आदि के अभिनय का कई
पद्धतियां, या कुछ विशेष स्थितिया के लिए मुद्राएँ, हस्तक आदि भी ह
।

कला या स्थान परिवतन का कल्पनाशील रुढ़ियां, चरित्रों या
परिस्थितिया के रेखांकन के लिए रंगपट्टी के तरह-□□□ □□प्र□□□, □□

□ा□ □□ स्□□ों □□ □ा□-व्यपार के समायोजन की युक्तियां, मुखौटों का प्रयोग आदि अनेक हथियार अब पारम्परिक नाट्यरुपों निदशक और अभिनेता के लिए सुलभ हो गये ह। लोक नाट्यों का एक बड़ा साथक और उपयोगी प्रभाव दृश्यसज्जा के उपर है। □□□□□□□□□□ी दृश्य-परिवेश रचने की बजाय, प्रतीकात्मकता, व्यंजना, अभिनय तथा रंगपट्टी एंव दृश्य-खण्डों और विभिन्न धरातलों के प्रयोग को बहुत □□□□□ ि□□□ □□

इस प्रकार एक अभिनव, लचीला, कल्पनामूलक नाट्यरुप धीरे-धीरे उभर रहा है जो नाटककार और निदशक दोनो को ही जटिल □ा□ि□□ □□भव के अनेक स्तरों को सम्प्रेषित कर सकने म सहायक □□ □□□□ □□ इस प्रकिया म जो प्रस्तुति-□ि□□□रु□ □□□ी □ □□ ि□□□-□-किसी प्रकार से '□म्□□ □□' □□ '□□□□ ि□□□□' □ी □ि□□□□ है जिसम कविता के साथ, नृत्य, संगीत, अभिनय और यहां तक कि रं□□□ □□□□ □□□ □□ □□□□□ □□ □□□ □ी □□□ि□□□□□□□, □□ खर्चीली, अभिनय-केन्द्रित तथा मुख्यतः प्रदशनात्मक या 'ि□□ट्रि□□' शैलियां ह, जिसम सूक्ष्मता और गहराई के साथ दशकों के लिए आकषक और मनोरंजन के तत्व भरपूर मात्रा म ह। □□ □□□ □□□□ □□स्□ि□□ □□□□□ □ी □नः प्रतिष्ठा की शुरुआत है जिसम नाट्यनुभव यथाथ की बाहरी अनुकृति से नहीं, बल्कि दशकों की कल्पना को उकसाने और उनकी सहभागिता को संभव बनाने से होता है। □□ कहना कोई अत्युक्ति नहीं कि इन वर्षों की अधिकतर श्रेष्ठ प्रस्तुतियां □□ी □□□□ ि□□□-□-किसी रुप म लोक नाट्यों के व्यवहारों और तत्वों से प्रेरित या प्रभावित ह।